RAM LAL ANAND COLLEGE
श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्
1964
UNIVERSITY OF DELHI

सम्भव

जनवरी–जून 2024

हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, राम लाल आनंद महाविद्यालय

मैं किसान हूँ

● **पुष्पेंद्र गौतम**

दर्द हथेलियों में पड़ी दरारों से पता चलता है
हां, पैरों में बिवाइयां भी देखी जा सकती हैं
पैरों की बिवाइयां दर्द और मेहनत की सूचक हैं
हाथों का कड़ापन घोर मेहनत बयां करते हैं
जिनके हैं वे इनका दर्द समझते हैं
नाजुक हाथों को लेकर एक शख्स
मुझे अपनी तरक्की गिना रहा था
मैंने उसकी आत्मा को पकड़ कर
एक किसान की हथेलियों से रगड़ दिया
उसके अंदर का मेहनती आदमी जमीन पर
अकड़-अकड़ कर मर गया
उसके शरीर के हर अंश का किसान से मिलकर विध्वंस हो गया
किसान एक बिना मोह माया का मेहनती है
उसके आगे अपनी तरक्की न गिनाओ
वह निवाला बनाकर तुमको दे रहा
उसका निवाला खाकर
उससे ज्यादती न करो
वह स्वार्थ नहीं जानता
अपने तराजू को एक समान रखता है
बेईमानी उसके आगे घुटने टेकती है
रात-दिन गर्मी-सर्दी उससे लड़ कर हार जाती है
हवाएं उसके शरीर से टकरा कर अपना रुख बदल लेती हैं
वह अटल है
वह अडिग है
क्योंकि असली मेहनती किसान है
वह किसान है इसीलिए उसका काम कहां आसान है
वह तो संघर्ष का एक प्रतीक है
विपत्तियों से लड़ने वाला
असफलताओं से जूझने वाला
देश का जीता जागता आधार है
आदर्श है, सम्मान है किसान
उसकी पगड़ी की इज्जत किया करो
उसके कर्तव्यों को तुम नीचा समझते हो
इसमें तुम ही नीचे हो, क्योंकि वह तो हमें रोटी देता है
तुम्हारा हमें पता नहीं
गौतम तो उनका हमेशा कर्जदार है
तुम भी बनो, क्योंकि किसान बनना इतना आसान नहीं
अगर है, तो मिट्टी से मिलकर मिट्टी में मिल जाओ।

अनुक्रमणिका

संपादकीय

व्यापक परिवर्तनों पर युवा पत्रकारों की चिंता : राकेश कुमार 1

लेख

रेडियो की पहचान बन गए अमीन सयानी : **सोनिका** 2
रघु राय यानी फोटोग्राफी का सितारा : **आदित्य कनोजिया** 4
समाज, वेश्यावृत्ति और भंसाली की फिल्में : **खुशी वशिष्ठ** 5
वेबसीरीज में बाल चरित्र और उनका चित्रण : **मो. सलमान** 7
हिंदी सिनेमा में पत्रकारिता की छबियां : **कविता यादव** **9**
युवाओं को भ्रमित करती हिंसक फिल्में : **कविता त्रिपाठी** 10
आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस और पत्रकारिता : **श्रीयांश तिवारी** 12
अभिघातक घटनाओं का पत्रकारों पर प्रभाव : **कंचन गुप्ता** 13
लखनऊ की ऐतिहासिक विरासत है यहां की चिकनकारी : **लक्ष्मी** **14**
विद्यार्थियों का जीवन छीन रही हैं अंतहीन अपेक्षाएं : **निशा मिश्रा** 16
ग्रामीण खेलों से छुटकारा ले न जाए बचपन सारा : **शृंगारिका उपाध्याय** **18**
पर्यावरण संरक्षण में कॉप सम्मेलन की मुहिम : **अनुराग** **20**
उत्तराखंड मांगे नया भूकानून : **साक्षी जोशी** 22
जनसंख्या नियंत्रण : छोटे परिवार की नीति अपनाएं : **आंचल** **23**
विकसित भारत संकल्प यात्रा : **विवेक** **24**
पुस्तक प्रेमियों की शान है विश्व पुस्तक मेला : **पवन** **25**
दिल्ली विवि की पुष्प प्रदर्शनी का क्या कहना : **आयुष** **27**

पुस्तक समीक्षा

नया नजरिया दिखाती प्रतिनिधि कविताएं : **योगेश प्रताप** **29**

कविता

मैं किसान हूँ : **पुष्पेंद्र गौतम** फ्रंट इनर

सम्भव

वर्ष : 18 अंक : 1

पूर्णांक–24

जनवरी–जून 2024

मई 2024 में प्रकाशित

संरक्षक मंडल

प्राचार्य

प्रो. राकेश कुमार गुप्ता

प्रभारी

प्रो. राकेश कुमार

संपादक मंडल

संपादक

प्रो. राकेश कुमार

डॉ. अटल तिवारी

छात्र संपादक

मीनाक्षी पंत

उप–संपादक

श्रुति मिश्रा

फोटो

इंटरनेट से साभार

कवर फोटो

आयुष प्रजापति

संपादकीय पता :

हिंदी, हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग

राम लाल आनंद महाविद्यालय,

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

बेनितो जुआरेज मार्ग, नई दिल्ली–110021

दूरभाष: 011–24112557

ईमेल : sambhavrla@gmail.com

स्वामी–प्रकाशक–मुद्रक

प्रो. राकेश कुमार गुप्ता

द्वारा बेनितो जुआरेज मार्ग

नई दिल्ली–110021 से प्रकाशित

और **यशस्वी प्रिंटर्स**, जी–2/122,

द्वितीय तल, सेक्टर–16,

दिल्ली–110089 से मुद्रित

'सम्भव' में प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, उनसे संपादक मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संपादकीय

व्यापक परिवर्तनों पर युवा पत्रकारों की चिंता

राजनीति किसी भी लोकतांत्रिक समाज की वह क्रिया होती है जिसके आधार पर व्यापक समाज के लिए नीतियाँ बनाई जाती हैं। राजनीति न केवल सत्ता के चरित्र को दर्शाती है अपितु वह समाज किस प्रकार का रूप धारण करेगा इसको भी निर्धारित करती है। हालांकि इसके प्रमाण प्राचीन वैश्विक समाज से ही देखने को मिल जाते हैं परंतु यदि आप अपने आस–पास भी देख लें तो इसके अनेक प्रमाण आपको मिल जाएंगे। इसलिए राजनीति पर चर्चा करना, उस पर चिंतन करना अत्यंत आवश्यक है, पर अक्सर यह देखने को मिलता है कि राजनीति को राजनीतिक दलों और राजनेताओं के लिए छोड़ दिया जाता है और सामान्यत: यह बात कही जाती है कि हमें राजनीति में कोई रुचि नहीं है। यह चिंता का विषय है क्योंकि राजनीति पर यदि स्वस्थ चर्चा नहीं होगी तो राजनीति में वे तत्व हावी और प्रभावी हो जाएंगे जो निजी स्वार्थों की सिद्धि के लिए राजनीति को अपना माध्यम मान रहे हैं।

यह तय है कि वे कभी भी राजनीति को जन सरोकारों और व्यापक जनकल्याण का जरिया नहीं बनने देंगे। आज जब दिल्ली विश्वविद्यालय में छात्रसंघ के चुनाव चल रहे हैं तो ऐसे में राजनीति पर चर्चा करना हमें जरूरी लगता है। हमारा ऐसा मानना है कि राजनीति पर व्यापक चर्चा देश की राजनीति के स्वास्थ्य के लिए और देश के विकास के लिए बहुत आवश्यक है।

हालांकि छात्र संघ चुनाव में प्रत्याशियों के द्वारा की जा रही नियमों की अनदेखी को न्यायालय ने गंभीरता से लिया है। लिंगदोह कमेटी की सिफारिशों को धता बताते हुए, बेतहाशा किए जा रहे धन और बल के इस्तेमाल को आपत्तिजनक माना है। साथ ही फ्लैक्स, पोस्टर और पम्फलेट से महाविद्यालय, विश्वविद्यालय और शहर को गंदा करने की प्रवृत्ति को भी गंभीरता से लिया है। न्यायालय ने सवाल किया है कि शहर और परिसरो में की गई गंदगी को साफ करने के लिए जितनी भी धनराशि खर्च हो, वह प्रत्याशियों से क्यों न वसूल की जाए? ऐसे ही सवालों को लेकर न्यायालय ने चुनाव तो होने दिया लेकिन मतों की गिनती पर फिलहाल रोक लगा दी। पूरे मामले की सुनवाई के बाद ही दिल्ली उच्च न्यायालय फैसला सुनाएगा।

छात्रसंघ के चुनावों से आगे देश और दुनिया में हो व्यापक परिवर्तनों पर 'सम्भव' पत्रिका में गहन चर्चा होती रही है। 'सम्भव' पत्रिका के युवा संवाददाताओं ने इस अंक में कृत्रिम बुद्धिमत्ता यानी ए.आई. से लेकर सिनेमा तक पर अपनी लेखनी चलाई है। इस अंक में आपको पर्यावरण की चिंता भी देखने को मिलेगी। डॉ. अटल तिवारी जी के कुशल मार्गदर्शन में यह अंक पाठकों को अवश्य पसंद आएगा, ऐसा मेरा विश्वास है। 'सम्भव' की सम्पादकीय टीम को इस अंक के लिए बहुत–बहुत बधाई और शुभकामनाएं।

प्रो. राकेश कुमार

संयोजक

हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार

रेडियो की पहचान बन गए अमीन सयानी

• सोनिका

नमस्कार, बहनों और भाइयों... के साथ अपने कार्यक्रम को शुरू करने वाले अमीन सयानी रेडियो की दुनिया का एक ऐसा नाम हैं जिन्होंने रेडियो मनोरंजन को भारतीय समाज और परिवेश से परिचित कराया। एक ऐसा वक्त जब रेडियो सिर्फ सूचनाओं और जानकारी प्राप्त करने का माध्यम हुआ करता था। अमीन सयानी ने अपने बेहतरीन कार्यक्रम और बोलने के अंदाज के साथ रेडियो श्रोताओं का मनोरंजन करना शुरू किया। जिन लोगों ने अमीन सयानी को सुना है, वह अब भी मानते हैं कि सयानी की आवाज सुनने पर ऐसा लगता था कि मानो वह यहां के हैं ही नहीं। एक ऐसी आवाज जो दिल से निकलती और दिल को छू जाती। अमीन सयानी ने अपने जीवन में कई रेडियो कार्यक्रम किए, लेकिन सबसे ज्यादा सुना जाने वाला कार्यक्रम 'बिनाका गीतमाला' रहा।

इस कार्यक्रम को सुनते हुए न जाने कितने बच्चों का बचपन बीता है। अपने सारे काम, सारे खेल भूलकर उन्होंने अमीन सयानी को सुना है। रेडियो की दुनिया में जब भी दीवानगी की बात होती है तो सयानीजी का नाम जरूर आता है। आए भी क्यों न, अमीन सयानी की जानदार आवाज और अदायगी ने हर वर्ग और हर उम्र के लोगों को अपना प्रशंसक बना दिया। जिसे आज के समय के रेडियो के श्रोता शायद ही समझ सकें। वह दौर कुछ ऐसा हुआ करता था कि बड़े-बड़े फिल्मी कलाकार भी अमीन सयानी के आगे फीके पड़ जाते थे। लोग जितने उत्साहित उनसे मिलने के लिए होते थे शायद ही किसी और हस्ती से मिलने के लिए होते हों।

वर्ष 1951 से अपने रेडियो कॅरिअर की शुरुआत करने वाले अमीन सयानी का जन्म 21 दिसंबर 1932 को मुंबई में हुआ था। उन्होंने अपने पूरे जीवन में 54 हजार सफल रेडियो कार्यक्रम और 19 हजार जिंगल्स बनाकर भारत ही नहीं बल्कि पूरे एशिया में अपनी धाक जमाई। नाम ऐसा कि रेडियो की दुनिया से जुड़ा हर व्यक्ति आज उनके जैसा बनना चाहता है। दिलचस्प बात यह है कि उन्होंने अपने कॅरिअर की

शुरुआत अंग्रेजी रेडियो से की। फिर बाद में हिंदी रेडियो का रुख अपनाया। उस समय शास्त्रीय संगीत, सूचनाओं आदि की भाषा शैली कठिन और किताबी हुआ करती थी, लेकिन जब अमीन सयानी ने हिंदी रेडियो में कदम रखा तो उन्होंने आम इंसान की बोलचाल वाली भाषा में अपने कार्यक्रमों की शुरुआत की। ऐसा पहली बार हो रहा था कि कोई आम बोलचाल वाली भाषा में अपने कार्यक्रम बना रहा है और साथ ही लोकप्रिय भी हो रहा है। अमीन सयानी को याद करने का सिर्फ यह कारण नहीं कि उन्होंने आम बोलचाल की भाषा को अपने कार्यक्रम की भाषा बनाया बल्कि उन्होंने काफी समय से मनोरंजन के उद्देश्य से प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों में अपना अमीन सयानी वाला तड़का भी लगाया। उस दौर में फिल्मों पर बातें नहीं हुआ करती थीं। उनके संगीत पर चर्चाएं नहीं की जाती थीं, लेकिन जब अमीन सयानी ने सिनेमा आधारित कार्यक्रम बनाना शुरू किया तो भारतीय फिल्मों की लोकप्रियता में भी बढ़ोतरी हुई। एक समय तो ऐसा भी आया कि तत्कालीन सरकार ने सिनेमा आधारित रेडियो कार्यक्रम इस कारण से बंद करवा दिया कि उस कार्यक्रम को सुनकर देश के युवाओं पर गलत असर पड़ रहा है। हालांकि बाद में

सरकार ने दूसरे कार्यक्रमों को मंजूरी देकर अपनी इस गलती को सुधारा।

अमीन सयानी ने बिनाका गीतमाला कार्यक्रम को 42 साल तक होस्ट किया। 20 साल की उम्र से अपने कॅरिअर की शुरुआत करने वाले अमीन सयानी अपनी भाषा शैली को लेकर काफी चर्चा में रहते थे। उन्होंने हिंदी और उर्दू के आसान शब्दों को मिलाकर एक नई भाषा बनाई। एक ऐसी भाषा, जिसे आसानी से समझा जा सके। साथ ही सुनने में भी वह अच्छी लगे। अमीन सयानी रेडियो की दुनिया के जादूगर थे। अच्छी भाषा के जानकार थे। उन्होंने एक मिली-जुली भाषा तो बनाई, लेकिन भाषा के सम्मान को ध्यान में रखते हुए। यही वे बातें हैं जो अमीन सयानी को अमीन सयानी बनाती हैं। रेडियो की दुनिया का सुपर स्टार बनाती हैं।

मनोरंजन के क्षेत्र में अमीन सयानी का कद इतना बड़ा है कि वर्तमान समय में भी रेडियो जॉकी उनकी एक झलक अपनी आवाज में लाना चाहते हैं। वह जिस प्रभावशाली ढंग से और रचनात्मकता के साथ अपने कार्यक्रमों को होस्ट किया करते थे उस गुण को हर होस्ट पाना चाहता था और आज भी उनकी यह इच्छा बरकरार है। आखिर कोई अमीन सयानी जैसा बनना क्यों नहीं चाहेगा।

देश की आजादी के साथ मनोरंजन के नए आयाम को भी आजादी मिली। उस दौर में मोहम्मद रफी, लता मंगेशकर, आशा भोसले, किशोर कुमार के कार्यक्रम बिनाका गीतमाला के जरिए सयानी साहब ने घर-घर तक पहुंचाया। इस कार्यक्रम की शुरुआत बदलते समाज और अवाम की पसंद को ध्यान में रखते हुए की गई। कार्यक्रम भले ही रेडियो सीलोन द्वारा प्रसारित किया जाता था, लेकिन उस कार्यक्रम को सुनने के लिए हर भारतीय लालायित रहता था। जिन लोगों के पास रेडियो की सुविधा थी वे रेडियो के सामने सारे कामकाज छोड़कर बैठ जाते थे और जिनके पास रेडियो की सुविधा नहीं थी वह गली के नुक्कड़ पर या पंचायत में लगे रेडियो से कार्यक्रम को सुनकर उसका आनंद लेते थे।

रेडियो की दुनिया में वह सयानी साहब ही थे जिन्होंने टेलीविजन की चकाचौंध आने के बावजूद अपनी रेडियो वाली पहचान बनाए रखी। एक ऐसे दौर में जब रेडियो श्रोताओं का झुकाव टेलीविजन की तरफ बढ़ रहा था। रेडियो मनोरंजन के क्षेत्र में अपने बेहतरीन काम और योगदान के लिए अमीन सयानी को कई सम्मानों से नवाजा गया, जिनमें रेडियो मिर्ची की ओर से कान हॉल ऑफ फेम अवार्ड, लू फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री और इंडियन रेडियो फोरम द्वारा लिविंग लीजेंड अवार्ड और साथ ही देश के उच्च सम्मानों में शामिल पद्मश्री अवार्ड से भी नवाजा गया।

अमीन सयानी एक बेहतरीन रेडियो होस्ट होने के नाते अपना हर फर्ज निभाया। लगभग सात दशक से लगातार जनता का मनोरंजन करने वाले अमीन सयानी थोड़ा थकने लगे थे। इसलिए उन्होंने निरंतर काम करने के बाद थोड़ा आराम चाहा और 20 फरवरी 2024 को अपनी आखिरी सांस ली। जिन रेडियो चैनल को आज हम सभी सुनते हैं उनके लिए अमीन सयानी कहीं न कहीं एक विरासत छोड़ गए हैं।

रघु राय यानी फोटोग्राफी का सितारा

• आदित्य कनोजिया

रघु राय मात्र एक फोटोग्राफर नहीं हैं। वह एक लेंस के माध्यम से कहानी सुनने वाले कहानीकार हैं। 1942 में झंग (वर्तमान पाकिस्तान) में जन्मे रघु राय की जीवन यात्रा भारत के साथ जुड़ी हुई है। राय ने अपनी यात्रा की शुरुआत भारत के विभिन्न रंगों के दस्तावेजीकरण करने से की। फोटोग्राफी के प्रति उनका जुनून 1960 के दशक के मध्य में जागृत हुआ। फोटोग्राफर रघु राय को उनका पहला कैमरा उनके बड़े भाई एस पॉल ने सौंपा था। इंडियन एक्सप्रेस के साथ हुई बातचीत के दौरान रघु राय बताते हैं कि 'इंजीनियरिंग पूरी करने और दो साल तक काम करने के बाद हमने छुट्टी ली और दिल्ली आ गए। उनके फोटोग्राफर मित्र उनसे मिलने आते थे और रघु राय उन्हें कैमरे और लेंस पर चर्चा करते हुए देखते थे।

रघु राय के दिल और दिमाग में फोटोग्राफी को लेकर इतना जुनून था कि उन्हें लगता जैसे जीवन में फोटोग्राफी के अलावा और कुछ है ही नहीं। यह पॉल ही थे जिन्होंने लंदन में द टाइम्स द्वारा आयोजित एक प्रतियोगिता में एक गधे की तस्वीर भेजी थी। यह सबसे पहली तस्वीर मानी जाती है जिससे रघु राय का रुझान फोटोग्राफी की तरफ बढ़ा। वह तस्वीर प्रकाशित हुई और भारतीय फोटोग्राफी में एक नए सितारे का जन्म हुआ। राय ने जल्द ही द स्टेट्समैन अखबार में अपना स्थान बना लिया और उसके मुख्य फोटोग्राफर बन गए। उनकी प्रतिभा पर किसी और का नहीं बल्कि प्रसिद्ध फोटोग्राफर हेनरी कार्टियर ब्रेसन का ध्यान गया, जिन्होंने राय के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1977 में कार्टियर ब्रेसन ने राय के काम से प्रभावित होकर उन्हें प्रतिष्ठित मैग्नम फोटोज एजेंसी के लिए नामांकित किया। यह रघु राय के जीवन में अनोखा मोड़ था। राय इस प्रतिष्ठित समूह में शामिल होने वाले भारत के पहले फोटोग्राफर बन गए। उन्हें अंतर्राष्ट्रीय पहचान मिली और उन्हें अपना अनूठा दृष्टिकोण प्रदर्शित करने के लिए एक मंच प्राप्त हुआ।

राय की तस्वीरें दस्तावेजीकरण से आगे निकल गईं। वह भारत की जटिलताओं की गहराई में जाने से नहीं डरते थे। हलचल भरे शहरी दृश्यों से लेकर शांत गांवों तक, उनके लेंस ने भारतीय संस्कृति की समृद्धि, यहां के लोगों के लचीलेपन,

गरीबी और सामाजिक संघर्षों की कठोर वास्तविकताओं को कैद किया। कोई भी राय के प्रतिष्ठित चित्रों का उल्लेख किए बिना उनके काम के बारे में बात नहीं कर सकता। मदर टेरेसा की करुणा से लेकर इंदिरा गांधी के दृढ़ संकल्प तक, उनके चित्रों में उनकी प्रजा की अंतरंगी झलकियां मिलती हैं। समाचार पत्रों और पत्रिकाओं से परे राय की तस्वीरों को रघु राय का भारत और इंदिरा गांधी : ए लिविंग लीगेसी जैसी प्रसिद्ध पुस्तकों में जगह मिली। ये संग्रह उनकी कलात्मक दृष्टि के प्रमाण के रूप में हैं। बांग्लादेश युद्ध पर उनके काम के लिए उन्हें 1972 में पद्मश्री से सम्मानित किया गया, जो किसी भी फोटोग्राफर के लिए पहली बार था और 2016 में भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने रघु राय को लाइफ टाइम अचीवमेंट अवार्ड से सम्मानित किया। रघु राय का प्रभाव उनकी तस्वीरों से कहीं आगे तक फैला हुआ है। उन्होंने इंडिया टुडे पत्रिका के लिए फोटोग्राफी के निदेशक के रूप में कार्य किया और एक उभरते राष्ट्र की दृश्य कथा को आकार दिया। वह प्रतिष्ठित फोटोग्राफी पुरस्कारों के जूरी सदस्य भी रहे हैं, जिससे फोटोग्राफरों की भावी पीढ़ियों को प्रेरणा मिली है।

रघु राय की विरासत फोटो पत्रकारिता का सर्वोत्तम उत्सव है। उन्होंने केवल क्षणों को कैद नहीं किया। उन्होंने एक राष्ट्र के सार, उसकी भावना, उसके संघर्ष और उसकी स्थायी सुंदरता को भी अपनी तस्वीरों में कैद किया है। उनकी तस्वीरें दुनिया भर के दर्शकों को प्रभावित करती रहती हैं और भारत के दिल में एक खास जगह रखती हैं।

समाज, वेश्यावृत्ति और भंसाली की फिल्में

• खुशी वशिष्ठ

सिनेमा का पहला अर्थ मनोरंजन मात्र मान लिया जाता है, किंतु सिनेमा केवल मनोरंजन और व्यवसाय नहीं है बल्कि उसकी अपनी एक सामाजिक जिम्मेदारी है। हम बड़े पर्दे पर क्या देख रहे हैं, किस सहजता से कहानी में छिपा संदेश हमें प्राप्त हो रहा है, सब हमारे आसपास के समाज से ही जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। यहां फिल्में और समाज एक दूसरे के पूरक नजर आते हैं। एक ओर जहां फिल्में सामाजिक बिंदुओं पर मौलिक रूप से केंद्रित होती हैं वहीं फिल्मों में दर्शाए गए पात्र और सीन, समाज की सोच को गहराई से प्रभावित करते नजर आते हैं।

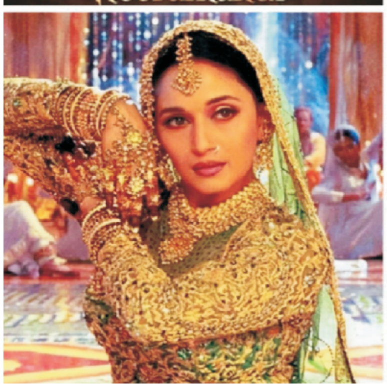

फिल्मों ने अक्सर उन तमाम गंभीर मुद्दों को उजागर करने का प्रयास किया जो हमसे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं। चाहे उसमें भ्रष्टाचार हो। बेरोजगारी हो या ऐसे विषय जो सामाजिक कलंक मानकर हाशिए पर धकेल दिए गए। एक ऐसा ही विषय रहा वेश्यावृत्ति का, जिसे मानवीय समझ ने अमानवीय और नकारात्मक छवि प्रदान की। वेश्या जीवन के प्रति सामाजिक नकारात्मक दृष्टिकोण पर सिनेमा ने बार-बार चोट की है। सामान्य जीवन से विपरीत हिंदी सिनेमा में फिल्मों के निर्माण के पहले दशक से ही वेश्यावृत्ति पर सकारात्मक रूप से चर्चा हुई है। इस व्यवसाय में संलग्न महिलाओं के जीवन की चुनौतियों और कठिनाइयों को केंद्र में रखकर बनने वाली फिल्में कई हैं। मुख्य धारा के हिंदी सिनेमा में पाकीजा, उमराव जान, मंडी, प्यासा, चमेली, चांदनी बार, देवदास, बेगम जान, लक्ष्मी, लागा चुनरी में दाग और राम तेरी गंगा मैली जैसी अनेक फिल्मों ने वेश्या जीवन के अलग-अलग पहलुओं को उजागर किया और वेश्या को एक नायिका के रूप में स्थान दिया। इन्हीं कहानियों से जुड़ी हाल ही में आई मुख्य धारा की फिल्म 'गंगूबाई काठियावाड़ी' ने धोखे से वेश्यावृत्ति की दरिया में फेंकी गई स्त्रियों की दुनिया को बड़े पर्दे पर प्रस्तुत किया।

संजय लीला भंसाली द्वारा निर्मित और निर्देशित इस फिल्म की कहानी नायिका के गंगा से गंगूबाई बनने के सफर के इर्द-गिर्द नजर आती है, जो बाद में वेश्यालय की प्रेसीडेंट बनने के साथ-साथ तमाम वेश्याओं की आवाज बनती है। गंगूबाई एक निडर और विद्रोही व्यक्तित्व की महिला है, जो विपरीत से विपरीत परिस्थिति में भी अपना काम निकालना जानती है। कहानी में एक वेश्या की ऐसी छवि जो पुरुषों को अपने जूते की नोक समझती है। शक्ति, संपत्ति और सद्बुद्धि अगर तीनों ही औरत हैं तो मर्दों को किस बात का गुरूर? कहकर वह कहीं न कहीं समाज में सालों से चले आ रहे पुरुष वर्चस्व को चुनौती देती है। वह समाज में वेश्यावृत्ति को कानूनी अधिकार दिलाने की भी मांग करती है। गंगूबाई का किरदार अपनी उस सामाजिक पहचान पर गर्व करता दिखाई देता है, जिसे सामाजिक कलंक माना जाता रहा है।

भंसाली की फिल्मों की यही खासियत हमेशा से रही है। वह वेश्या जीवन पर आधारित कई फिल्में बना चुके हैं। उनकी फिल्मों की नायिकाएं सशक्त और साहसी होती हैं। गंगूबाई के किरदार को भी उन्होंने उसी रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। कमाठीपुरा का वह वेश्यालय उन्होंने अपने बचपन में खुद अपनी आंखों से देखा है। वह बताते हैं कि जब वे स्कूल जाया करते थे तो उनके रास्ते में कमाठीपुरा पड़ता था। उसी की यादों को उन्होंने सेट पर जीवंत किया है। लेकिन यह पहली बार नहीं है जब भंसाली ने वेश्यावृत्ति को अपनी फिल्मों का केंद्र बनाया हो, इससे पहले भी वह देवदास में चंद्रमुखी के किरदार से अपनी इस विषय में रुचि जाहिर कर चुके हैं। चंद्रमुखी का किरदार गंगूबाई के किरदार से कुछ आयामों को छोड़कर ठीक उल्टा रहा। चंद्रमुखी जहां अपने प्रेम को जीवन का जरिया बनाती हैं, वहीं गंगूबाई अपनी प्रगति के लिए प्रेम को छोड़ती नजर आती है। चंद्रमुखी एक सहनशील, क्षमाशील और शांत पात्र है, जो एक वेश्या के निश्छल स्वभाव को दर्शाता है। लेकिन, वह स्वतंत्र और परिपक्व भी नजर आती है। भंसाली की यह नायिका भी अपने पेशे को स्वीकारात्मक दृष्टि से दिखाने का प्रयास करती है और समाज को इसका जिम्मेदार ठहराती है। जब उसे दबाने की कोशिश की जाती है, तब वह धैर्य और साहस का परिचय भी देती है और उंगली उठाने वाले का हाथ रोक कर उस पर तमाचा जड़ देती है। इस किरदार के हर लहजे को अभिनेत्री माधुरी दीक्षित ने पर्दे पर बखूबी अंकित किया। चंद्रमुखी के किरदार के पीछे भी कहीं न कहीं भंसाली के बचपन की वे यादें ही थीं। अपने एक साक्षात्कार में वह बताते हैं कि 'कैसे किसी व्यक्ति का रेट 20 रुपये हो सकता है? मैं उन्हें खरीददारों से अपनी देह का मोलभाव करते सुनते था। यह वे बातें थीं जो मेरे दिमाग में बचपन से ही रहीं और छप गईं। लेकिन मैं उन्हें पूरी तरह बता नहीं सका। मैं चंद्रमुखी के माध्यम से उन्हें ढूंढ रहा था। हम अपने लिए अनमोल हैं। हमें टैग नहीं किया जा सकता। हमें 5 रुपये, 20 रुपये या 50 रुपये में नहीं बेचा जा सकता। यह अमानवीय है।'

भंसाली अपने बचपन की उन गलियों को दो बार अलग-अलग फिल्मों के माध्यम से बड़े पर्दे पर दिखा चुके हैं। इसी के साथ जल्द ही वेश्यावृत्ति से संबंधित एक वेबसीरीज 'हीरामंडी-दि डायमंड बाजार' भी नेटफ्लिक्स पर आने वाली है। इस फिल्म के जरिए भंसाली अपना इस विषय

पर तीसरा प्रोजेक्ट करने जा रहे हैं। यह सीरीज आजादी के पहले के युग में लाहौर की हीरा मंडी पर आधारित है, जिसमें एक वेश्यालय में शासन को लेकर द्वंद्व की स्थिति दिखाई गई है।

यह फिल्में हमें एक ऐसा परिदृश्य देती हैं, जिससे हम समाज को और अधिक गहराई से समझ पाते हैं। गौर करने वाली बात यह है कि यह सिलसिला समझ बनाने तक ही सीमित रह जाता है। फिल्म जगत में इस विषय के छायांकन का जो इतिहास रहा है, उसका असर समाज पर उतनी गहराई से आज भी नहीं पड़ा है। हम अच्छी फिल्म देखते हैं। उससे प्रभावित होते हैं। कुछ दिन उसके बारे में सोचते हैं और फिर वापस उसी ढर्रे पर चल पड़ते हैं। आज भी समाज में वेश्याओं की स्थिति वैसी नहीं है, जैसी फिल्मों में आदर्शवादी रूप में दिखाई जाती है। फिल्म की नायिका अपना रास्ता स्वयं बनाने में सफल हो जाती है, लेकिन हकीकत में ऐसा देखने को नहीं मिलता। एक स्त्री को उसके शरीर और यौनिकता के तराजू पर आज भी तोला जाता है। गंगूबाई काठियावाड़ी में जिस कानूनी अधिकार की मांग की जाती है वह आज भी बहुत सारे प्रश्नचिन्हों से होकर गुजर रहे हैं। यदि किसी देह का मोल तय कर दिया जाएगा तो उसको एक वस्तु के रूप में समझा जाएगा। क्या कानूनी अधिकार दिला देने से भी वेश्यावृत्ति को समाज में वह पहचान और सम्मान मिल पाएगा जो बाकी व्यवसायों को मिलता है। साथ ही साथ यह भी प्रश्न उठता है कि क्या इससे मानव तस्करी को और बढ़ावा नहीं मिलेगा?

वेबसीरीज में बाल चरित्र और उनका चित्रण

• मो. सलमान

वेबसीरीज, वेब शो या कहें वेबिसोड। यह एक ऐसी वेब श्रृंखला होती है जो अलग-अलग एपिसोड्स में इंटरनेट पर प्रसारित की जाती है। वेब का मतलब होता है इंटरनेट और सीरीज का मतलब होता है लगातार। यानी कुछ ऐसे एपिसोड्स जो इंटरनेट पर लगातार या एक के बाद एक अपलोड किए जाते हैं, वेबसीरीज कहलाते हैं। जैसा कि हम सब जानते हैं कि आज का दौर इंटरनेट का दौर है और आज हर एक व्यक्ति के पास अपना मोबाइल एवं भरपूर इंटरनेट डेटा है, जिसे वह अपनी सुविधानुसार जब चाहे तब इस्तेमाल कर सकता है। 90 का दशक वह दशक था, जब व्यक्ति टेलीविजन पर अपने मनपसन्द कार्यक्रम और फिल्में देखना पसंद करता था, लेकिन बदलते दौर के साथ तकनीक भी काफी विकसित हुई। इसी के साथ मनुष्य की आवश्यकताएं और रुचियां भी बढ़ीं।

पिछले तीन-चार सालों से हम देखते आ रहे हैं कि भारत में अब टेलीविजन की जगह ओटीटी प्लेटफार्म्स ने ले ली है। इसमें दिखाई जाने वाली सामग्री विशेष रूप से युवा वर्ग को ध्यान में रखकर बनाई जाती है, जो किसी टीवी सीरियल या फिल्म की अपेक्षा ओटीटी प्लेटफार्म-नेटफ्लिक्स, अमेजन प्राइम और हॉट स्टार आदि पर अधिक मात्रा में वेबसीरीज देखना पसंद कर रहा है। भारत में आजकल हिंदी, अंग्रेजी के साथ-साथ कई स्थानीय भाषाओं में भी वेबसीरीज बनाई जा रही हैं। युवाओं के साथ-साथ वेबसीरीज बच्चों को भी बड़े स्तर पर प्रभावित करती हैं। जिस तरह आधुनिक दौर में वेबसीरीज का प्रमुख स्थान है। इन सीरीज में न केवल मनोरंजन का अच्छा स्रोत होता है बल्कि यह एक महत्वपूर्ण शिक्षा का भी साधन बन चुकी हैं। वेबसीरीज में बाल चरित्रों के चित्रण नवयुवाओं को मनोरंजन के साथ-साथ नैतिक और सामाजिक मूल्यों की सीख प्रदान करते हैं।

बच्चों के लिए यह चरित्र न केवल कहानी का हिस्सा होते हैं बल्कि उनके जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाते हैं। वेबसीरीज में बाल चरित्रों के चित्रण का उदाहरण देखने के लिए हमें बच्चों के पसंदीदा कार्टून श्रृंखलाओं पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। इन श्रृंखलाओं में बाल चरित्र विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में परिचित होते हैं, जिनसे बच्चे उनके जीवन और मानवता की महत्वपूर्ण बातें सीख सकते हैं। इन चरित्रों के माध्यम से बच्चों को अन्याय, समर्थन, साहस और समाजसेवा जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर सोचने का अवसर मिलता है। साथ ही बच्चों को नैतिक मूल्यों की समझ प्राप्त होती है। यह बाल चरित्र उन्हें अच्छे और बुरे के बीच सही-गलत का अंतर समझाते हैं। उन्हें सही रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं। वेबसीरीज में बाल चरित्रों के चित्रण के माध्यम से बच्चों को नई विचारधारा का परिचय भी मिलता है। यह चरित्र बच्चों को नए और अनूठे विचारों से परिचित कराते हैं और उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि अगर वे अपनी शक्तियों का सही उपयोग करें तो वे कुछ भी कर सकते हैं। इसके अलावा ये

चरित्र बच्चों को संवेदनशीलता, समस्या के समाधान और कौशल के बारे में भी सिखाते हैं।

समाज पर वेबसीरीज के बाल चरित्रों का प्रभाव एक महत्वपूर्ण विषय है जो दर्शकों को सोचने पर विवश करता है। साथ ही सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है। इसका मतलब है कि वेबसीरीज के माध्यम से बाल युक्त चरित्रों की कहानी के प्रदर्शन से समाज को प्रभावित किया जाता है। यह चरित्र सामाजिक संरचना में बदलाव लाने या समस्याओं का समाधान करने के लिए संघर्ष करते हैं और दर्शकों को भी समाज में बदलाव लाने के लिए प्रेरित करते हैं। इन चरित्रों के कार्य और निर्णय दर्शकों को सोचने पर मजबूर करते हैं और उन्हें समाज में सकारात्मक परिवर्तन की दिशा में प्रेरित करते हैं। इस प्रकार, बाल चरित्रों का प्रभाव समाज को सकारात्मक रूप में प्रेरित करता है और उसमें संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान करता है।

इसके साथ ही बाल चरित्र के माध्यम से बच्चे अनुशासन और नैतिकता सीखते हैं। यह वेबसीरीज में दो महत्वपूर्ण तत्व हैं जो दर्शकों को सही और गलत के बीच अंतर को समझाते हैं। उन्हें संयमित और नैतिक जीवन जीने के महत्व को समझाते हैं। अनुशासन और नैतिकता के बारे में वेबसीरीज में कई संदेश प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इनमें समय पर पहुंचने, स्वच्छता, संयम, समर्थन और विनम्रता जैसे गुणों के महत्व को जानकारी देना शामिल हो सकता है। कई वेबसीरीज बचपन के महत्व का प्रतिबिंब भी करवाते हैं। दर्शकों को बचपन के अनुभवों की महत्ता को समझाते हैं और उन्हें बचपन के मानवीय, आत्मिक और भावनात्मक अवस्थाओं को समझने के लिए प्रेरित करते हैं। वेबसीरीज में बचपन के महत्व का प्रतिबिंब विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है। बचपन के सुंदर और अच्छी यादों, बचपन के सपनों का महत्व और बचपन के निराशाजनक और कठिन पलों को भी दिखाया जा सकता है। वेबसीरीज में कई एक बाल चरित्र छोटे बच्चों को संबंधों और विश्वास का महत्व भी समझाते हैं। इसमें पारिवारिक संबंधों, मित्रता, प्रेम और विश्वास के महत्वपूर्ण पहलुओं को समझाने का प्रयास शामिल होता है। यह उन्हें समझने में मदद करता है कि संबंध और विश्वास कैसे उनके जीवन का एक अहम पहलू है।

वेबसीरीज में बाल चरित्रों के चित्रण का महत्व अहम है। इन चरित्रों के माध्यम से बच्चों को मनोरंजन के साथ-साथ नैतिक, सामाजिक और मानवीय मूल्यों की समझ प्राप्त होती है। यह चरित्र बच्चों को सही और गलत के बीच अंतर को समझाते हैं और उन्हें सच्चाई, ईमानदारी और साहस के महत्व को सिखाते हैं। यह न केवल मनोरंजन के लिए है बल्कि इससे सामाजिक और नैतिक शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान होता है।

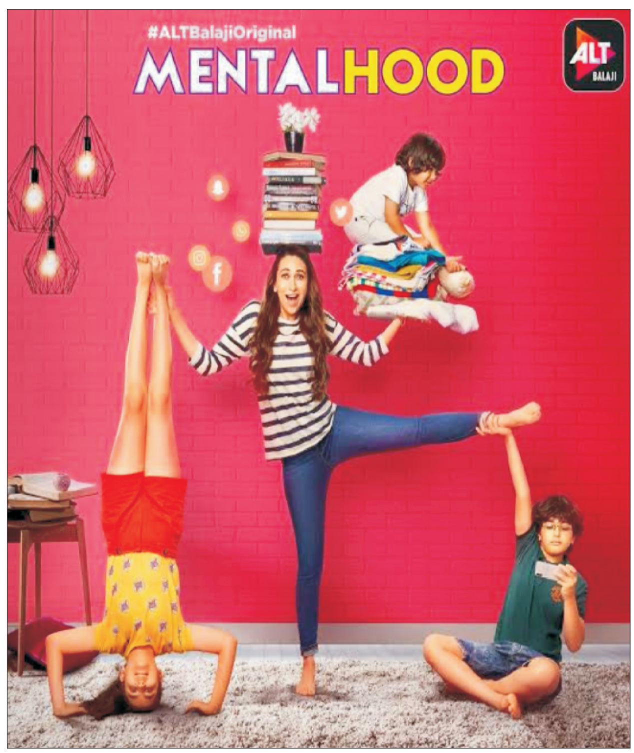

हिंदी सिनेमा में पत्रकारिता की छवियां

• कविता यादव

सिनेमा को समाज का आइना माना जाता है और मीडिया एक ऐसा दर्पण है जो समाज और देश को उसकी सच्चाइयों से अवगत कराता है। फिल्मों में मीडिया के तमाम पहलुओं को फिल्मकार अपने-अपने नजरिए से दर्शाते हैं। यदि फिल्म और पत्रकारिता के इतिहास की बात की जाए तो पता चलता है कि इनका इतिहास बहुत पुराना नहीं है। भारतीय सिनेमा का इतिहास उन्नीसवीं शताब्दी के पहले का है। भारतीय सिनेमा के पिता माने जाने वाले दादा साहेब फाल्के ने भारत की पहली फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' बनाई थी, जो सन् 1913 में प्रदर्शित हुई। मूक फिल्म होने के बावजूद भी इसे सराहा गया। भारतीय सिनेमा के सबसे प्रभावशाली व्यक्तित्व दादा साहेब फाल्के ने 1913 से 1918 तक 23 फिल्मों का निर्माण और संचालन किया।

1920 के दशक की शुरुआत में फिल्म निर्माण करने वाली कुछ कंपनियां उभर कर सामने आई। इस तरह फिल्म निर्माण के क्षेत्र में एक क्रांति आ गई। पत्रकारिता के इतिहास पर एक नजर डाली जाए तो पत्रकारिता की शुरुआत बंगाल से हुई और इसका श्रेय राजा राममोहन राय को दिया जाता है। राजा राममोहन राय ने ही सबसे पहले प्रेस को सामाजिक उद्देश्य से जोड़ा। भारत के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक हितों का समर्थन किया। समाज में व्याप्त अंधविश्वास और कुरीतियों पर प्रहार किए और अपने समाचार पत्रों के जरिए जनता में जागरूकता पैदा की। सन् 1816 में प्रकाशित 'बंगाल गजट' भारतीय भाषा का पहला समाचार पत्र है, जिसके संपादक गंगाधर भट्टाचार्य थे। 30 मई 1826 को कलकत्ता से पंडित जुगल किशोर शुक्ल के संपादन में निकलने वाले 'उदन्त मार्तण्ड' को हिंदी का पहला समाचार पत्र माना जाता है।

दिल्ली को हमेशा से फिल्म पत्रकारिता का निर्माण केन्द्र माना जाता है, वहीं फिल्म निर्माण में बंबई, मद्रास, कलकत्ता को अग्रणी केन्द्र माना जाता है। पत्रकारिता में अग्रणी होने का श्रेय हमेशा से दिल्ली को है, क्योंकि सबसे ज्यादा फिल्म पत्रिकाएं यही से प्रकाशित होती हैं। हालांकि हिंदी के फिल्मी पत्र कलकत्ता और मुंबई से भी निकलते रहे हैं। लेकिन दिल्ली का महत्व होने का प्रमुख कारण यहां के वितरण और प्रदर्शन का प्रमुख केंद्र है। वहीं हिंदी सिनेमा में पत्रकारिता के चित्रण की बात की जाए तो हिंदी सिनेमा में न्यू डेल्ही टाइम्स, जाने भी दो यारों, कटहल, नायक, पेज थ्री, द ताशकंद फाइल्स, धमाका जैसी कई फिल्में पत्रकारिता के नजरिए से दिखाई गई हैं।

इन फिल्मों में पत्रकारों एवं पत्रकारिता व्यवसाय की कार्यशैली, चकाचौंध से इतर पत्रकारों का जीवन, क्राइम रिपोर्टर के जीवन की समस्याएं आदि की झलक देखने को मिलती है। यदि इन फिल्मों में पत्रकारों एवं पत्रकारिता व्यवसाय के चित्रण को देखा जाए तो फिल्म 'न्यू डेल्ही टाइम्स' में शशि कपूर का किरदार बेहद ईमानदार संपादक के रूप में दिखाया गया है। फिल्म के अंत में दो राजनीतिक पार्टियां अपने हितों को साधने के लिए उन्हें मोहरे के रूप में इस्तेमाल करती हैं। अमिताभ बच्चन और शबाना आजमी अभिनीत फिल्म 'मैं आजाद हूं' में पत्रकारों के चित्रण को देखा जाए तो अपने स्वार्थ के लिए मीडिया किस प्रकार किसी की छवि को बनाने या बिगाड़ने का काम करती है, यह देखने को मिलता है।

मधुर भंडारकर के निर्देशन में बनी फिल्म 'पेज 3' में पत्रकारों के नजरिए से कहानी को दर्शाया गया है। इस फिल्म में अखबारों में चमकती हस्तियों की बातें, बड़े- बड़े व्यक्तित्वों व फिल्मी सितारों के दोहरे चरित्र की दास्तान यह फिल्म बखूबी बयां करती है। साथ ही यह फिल्म एक मीडिया संस्थान के संपादक की मजबूरियां और अखबार के मालिक के हितों के सवाल भी उठाने की कोशिश करती है। यदि फिल्म 'द ताशकंद फाइल' की बात की जाए तो यह फिल्म भारत के पूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की रहस्यमयी मौत से संबंधित है। इस फिल्म की कहानी भी एक पत्रकार की खोज के इर्द-गिर्द रची गई है। इस फिल्म के निर्देशक विवेक रंजन का कहना है कि फिल्म ईमानदार पत्रकारों को समर्पित है।

भारतीय सिनेमा में ऐसी कई फिल्में बनाई गई जो पत्रकारिता के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों को उजागर करती हैं।

युवाओं को भ्रमित करती हिंसक फिल्में

• **कविता त्रिपाठी**

वर्तमान समय में फिल्में मनोरंजन का एक बड़ा साधन हैं। फिल्मों का असर हमारे जीवन पर व्यापक रूप से होता है और हम उनकी कथाओं और संदेशों से अपने वास्तविक जीवन में प्रेरणा लेते हैं। खासकर युवाओं के व्यक्तित्व पर फिल्मों का गहरा प्रभाव पड़ता है। यहां तक कि उनकी छाप हमारी दिनचर्या में भी महसूस की जा सकती है। जिस तरह के फिल्मों के विचार और आदर्श होंगे उसी तरह की प्रेरणा हमें मिलेगी। ऐसे में अगर युवा वर्ग हिंसक या असंवेदनशील फिल्में ज्यादा देखेंगे तो उसका दुष्प्रभाव उनके जीवन में भी देखने को मिल सकता है।

यह कड़वा सच है कि आज जब अधिकतम युवाओं का मन मनोरंजन ढूंढता है तो उनकी प्राथमिकता हिंसक या असंवेदनशील फिल्में ही होती हैं। फिल्मों के साथ-साथ युवाओं के आचार-विचार में भी परिवर्तन आ गया है। आज के दौर में सिनेमा का स्वरूप बदल चुका है। फिल्मों के जरिए ऐसी चीजें दिखाई जाती हैं जिससे आम व्यक्ति इंसानियत से दूर होता चला जा रहा है। फिल्मों में अनावश्यक रूप से गलत शब्दों का इस्तेमाल किया जाता है। फिल्मों के नाम पर हिंसा को बढ़ावा दिया जा रहा है और इससे युवाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

मनोरंजन के नाम पर फिल्मों में हत्या और हिंसक दृश्य देखने को मिलते हैं और इस तरह की विषय वस्तु को देखने के बाद युवाओं की सोच में क्रूर व हिंसक रूप में परिवर्तन आया है। हिंसा तथा अपराध की घटनाओं पर आधारित फिल्मों में अपराध करने के तौर-तरीकों को विस्तार से दिखाया जाता है और हिंसा के नए तरीकों को आकर्षक और मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। फिल्मों में ऐसे दृश्य दिखाए जाते हैं, जिनसे लोगों में गलत भावना बढ़ती है और खास कर युवा पीढ़ी पर इसका बुरा असर पड़ता है। जब लोग फिल्मों में हिंसा को गौरवान्वित तरीके से देखते हैं या उसका प्रदर्शन इस तरीके से किया जाता है कि यह कितनी अच्छी चीज है तो

युवाओं में भी उस प्रकार की गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है। इससे उनका मानसिक संतुलन प्रभावित हो सकता है और वे हिंसा को एक सामान्य और स्वाभाविक चीज मान सकते हैं।

हाल ही में दो ब्लॉक बस्टर हिट फिल्में 'कबीर सिंह' और 'एनिमल' इसका बड़ा उदाहरण हैं। जिनसे यह पता चलता है कि युवाओं पर हिंसक फिल्मों का दुष्प्रभाव होता है। इन दोनों ही फिल्मों के निर्देशक संदीप रेढीवांगा हैं और दोनों फिल्में सुपरहिट भी रही हैं। इन फिल्मों का क्रेज युवाओं के बीच खूब देखा गया। अभिनेता शाहिद कपूर ने 'कबीर सिंह' में कबीर राजधीर सिंह का किरदार निभाया है। इसमें उनका

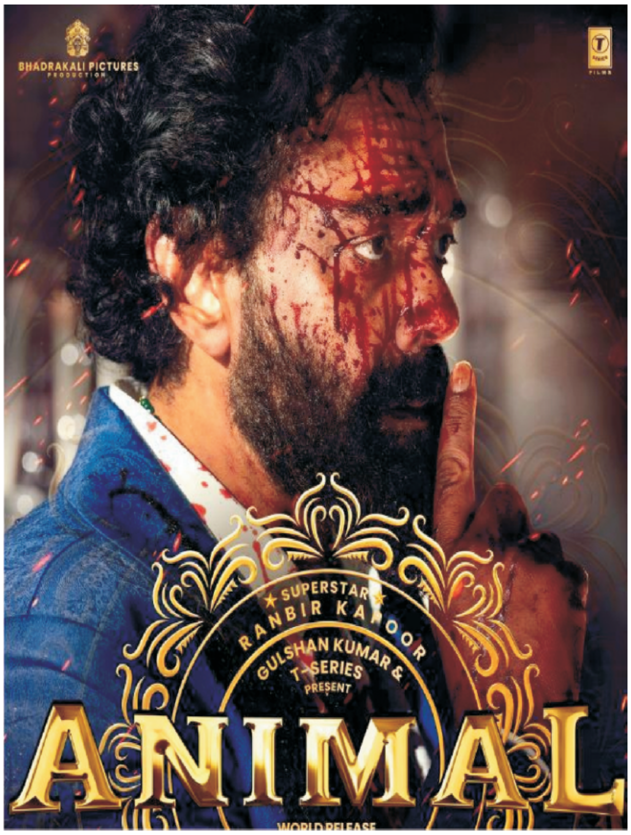

चरित्र शराब और सिगरेट जैसी चीजों का इस्तेमाल करते हुए दिखाया गया है। हालांकि हमारी शिक्षा यह सिखाती है कि हमें इन सब चीजों से दूर रहना चाहिए। पर मनुष्य का स्वभाव ही कुछ ऐसा होता है कि जब वह किसी विषयवस्तु को देखता है तो उसकी ओर आकर्षित होता है। उसका सदुपयोग करता है या दुरुपयोग, पर यह एकाकी आप पर निर्भर करता है कि आप किसी फिल्म को देखकर उससे किस प्रकार की प्रेरणा लेते हैं।

हाल ही में रणबीर कपूर की 'एनिमल' भी चर्चा का विषय रही है। उसमें भी कई ऐसे दृश्य हैं जो युवा पीढ़ी पर दुष्प्रभाव डालते हैं। 'एनिमल' का मुख्य किरदार खुद को अल्फा मेल समझता है, जिसका अर्थ है लड़ाई का नेतृत्व अकेला ही करने की जिद्द रखने वाला, हिंसा को बढ़ावा देने वाला, कानून को न मानने वाला और पत्नी की सीमाओं को बांधने वाला। ऐसे में यह फिल्म मनुष्य को जानवर बनने की दिशा में धकेलती है, जबकि हमारी शिक्षा हमें जानवर से मनुष्य बनना सिखाती है। इस प्रकार की फिल्में हिंसा को तो बढ़ावा देती ही हैं। साथ ही महिला विरोधी नजरिए को भी बेशर्मी से दर्शाती हैं। ऐसी फिल्में कभी भी युवाओं की रोल मॉडल नहीं होनी चाहिए। यह फिल्में कितनी ही आकर्षक क्यों न हों, पर युवाओं को इनसे दूरी तय रखनी चाहिए। फिल्में हमेशा हमारे समाज की वास्तविक छवि को दर्शाने वाला आइना रही हैं।

भारतीय युवा पीढ़ी अब भी फिल्मों के माध्यम से बहुत कुछ सीख सकती है। अच्छी चीजें सीखना मुश्किल हो सकता है, लेकिन जब कोई बुराई का समर्थन करता है तो लोग तुरंत प्रतिक्रिया देते हैं। किसी को सही दिशा में प्रेरित करना कठिन हो सकता है, लेकिन वह उस फिल्म से क्या सीख लेते हैं, वह लोगों की सोच पर निर्भर करता है कि वह कितने प्रभावित हैं। फिल्मों के शुरुआती दौर में समाज में मौजूद सामाजिक विवादों को उजागर कर उन्हें दूर करने के लिए प्रेरित किया जाता था। ऐसा नहीं है कि फिल्मों ने युवाओं में नकारात्मकता को ही बढ़ावा दिया है। कई अच्छी फिल्में भी बनी हैं। जिन्होंने समाज को नई दिशा दिखाई और दर्शकों को मनोरंजन प्रदान किया। लेकिन अब ऐसी फिल्में कम होती हैं, जिन्हें हम अपने परिवार के साथ बैठकर देख सकते हैं। अब अधिकांश फिल्मों का विषय हिंसा और अश्लीलता है। हमारे देश का हर कोना स्थानीय परंपराओं, कहानियों और किस्सों से भरपूर है। ऐसे में स्थानीय विषयों को फिल्मों में शामिल करने से न केवल फिल्मों की कहानी मजबूत होगी बल्कि नए और अनजाने विषयों को भी खोजने का अवसर मिलेगा।

हिंसक फिल्में युवाओं के मानसिक और नैतिक विकास पर गंभीर असर डाल सकती हैं। ऐसी सामग्री जिसमें हिंसा के दृश्य और अभद्र भाषा हो वो युवाओ के दृष्टिकोण को प्रभावित कर, उन्हें भ्रमित कर सकती है। इस चुनौती से निपटने के लिए यह जरूरी है कि समाज, विशेषकर अभिभावक और शिक्षक युवाओं को सकारात्मक और स्वस्थ सामग्री की ओर प्रोत्साहित करें।

साथ ही, यह भी आवश्यक है कि वे मीडिया साक्षरता के महत्व को समझें और फिल्मों में दिखाई गई हिंसा को वास्तविक दुनिया से अलग करना सीखें। जागरूकता और सही मार्गदर्शन ही युवाओं को भ्रमित करने वाले इन प्रभावों से बचा सकता है और उन्हें एक जिम्मेदार नागरिक बनने में मदद कर सकता है।

आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस और पत्रकारिता

• **श्रीयांश तिवारी**

जब हम किसी मशीन को इस प्रकार तैयार करते हैं कि वह मनुष्य जैसा सोच सके व कार्य कर सके, तब वह आर्टिफीशियल इंटेलीजेंस (एआई) कहलाता है। एआई कंप्यूटर विज्ञान की ही एक शाखा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता यानी एआई के विशेष अनुप्रयोग हैं, जिसमें विशेषज्ञ प्रणाली, प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण, वाक् पहचान और मशीन दृष्टि शामिल है। सोचने, समझने, सीखने की समस्या को सुलझाने के लिए मशीनों का निर्माण किया जाता है, जिन्हें आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस कहते हैं।

एआई सिस्टम भारी मात्रा में लेवल किए गए प्रशिक्षण उत्तर को निगल जाता है। साथ ही संबंधों और पैटर्न के लिए डाटा का विश्लेषण करता है। इन पैटर्न का उपयोग भविष्य की अवस्थाओं का अनुमान लगाने के लिए किया जाता है। एआई महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह संगठनों को उनके संचालन के बारे में अंतरदृष्टि प्रदान करता है, जिससे वह पहले अनजान थे। एआई जटिल से जटिल कार्य आसानी से करने की क्षमता रखता है, जिनमें पहले मानवीय हस्तक्षेप की आवश्यकता होती थी। एआई की शुरुआत 1950 के दशक में हुई थी। साल 1950 में एआई के जनक माने जाने वाले जॉन मैक्कार्थी ने दुनिया की पहली एआई कॉन्फ्रेंस में इसे 'आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस' शब्द दिया था। साथ ही बताया था कि एआई एक बड़े स्तर की कंप्यूटर विज्ञान तकनीक है, जो मशीनों की बुद्धिमत्ता को बढ़ाती है। एआई की मदद से रोबोट बनाए जा सकते हैं। इसके उपरांत कई इंस्टीट्यूट और विश्वविद्यालयों में एआई केंद्र खोले गए। इस पर पहले से ज्यादा शोध होने शुरू हुए। इसी बीच वैज्ञानिकों को कई नई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। जैसे-ऐसा सिस्टम बनाना जो खुद सीख सके। इनपुट्स को समझ सके और कम से कम समय में समस्या को हल कर सके। वर्ष 1957-58 में दो वैज्ञानिकों ने जीपीएस नाम की एल्गोरिथम पब्लिश की, जिसके जरिए सामान्य समस्याओं का समाधान किया जा सकता था। बता दें कि एआई हमारा भविष्य नहीं बल्कि हमारा वर्तमान है। जैसे-जैसे तकनीकी विकास होता गया वैसे-वैसे हम एआई से जुड़ते गए। मनोरंजन के क्षेत्र में भी इससे संबंधित कई फिल्में बनीं। इनमें मैट्रिक्स, रोबोट, टर्मिनेटर, ब्लेड रनर आदि शामिल हैं। फिल्में दिखाती हैं कि किस प्रकार एक रोबोट सोचता है और फिर वह कार्य करता है।

ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि एआई मीडिया के क्षेत्र में क्रांति ला सकता है। इसके जरिए व्यापक स्तर पर पाठकों से जुड़ने के नए तरीके मिलते हैं। एआई से किसी भी जानकारी को अधिक कुशलता से खोजने और बेहतर जानकारी पाने की संभावना बढ़ती है। इस क्षेत्र में पिछले एक साल में काफी महत्वपूर्ण बदलाव आया है। दुनिया भर के न्यूज रूम में एआई के प्रति स्वीकार्यता और जागरूकता बढ़ रही है। आशंका लगाई जा रही है कि इससे पत्रकारिता में नई किस्म की नौकरियों के अवसर पैदा होंगे। कोरोना काल में वर्ष 2020 में होने वाले ओलंपिक खेल रद्द कर दिए गए थे, लेकिन ऐसे में द न्यूयॉर्क टाइम्स ने थ्री डी दृश्य के साथ खेलों का कवरेज करने के लिए कंप्यूटर विजन और एआई तकनीक का प्रयोग करने की योजना बनाई।

वर्ष 2019 में लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स ने पत्रकारिता और एआई का एक वैश्विक सर्वेक्षण प्रकाशित किया। यह रिपोर्ट 32 देश के 71 मीडिया संस्थानों के साथ साक्षात्कार पर आधारित थी। इसका निष्कर्ष निकल कर सामने आया कि एआई के कारण पत्रकारिता को एक गतिशील तरीके से नया रूप मिलेगा। इसका दीर्घकालिक तौर पर संरचनात्मक प्रभाव भी पड़ेगा। रिपोर्ट में यह भी कहा गया था कि पत्रकारिता में एआइ टूल के उपयोग का समाज पर भी गहरा असर होगा। पत्रकारिता और प्रौद्योगिकी का हमेशा घनिष्ठ संबंध रहा है, जैसे फोटोग्राफी, टेलीफोन, रेडियो, टीवी, कंप्यूटर, इंटरनेट, स्मार्टफोन आदि हर एक तकनीक पहले काफी प्रचार के साथ आती है। फिर उसे लेकर चिंता की लहर पैदा होती है, लेकिन इसके बाद उसका रचनात्मक उपयोग होने लगता है।

अभिघातक घटनाओं का पत्रकारों पर प्रभाव

- **कंचन गुप्ता**

अमेरिकन साइकोलॉजिकल एसोसिएशन आघात को एक भयानक घटना के प्रति भावनात्मक प्रतिक्रिया के रूप में परिभाषित करता है। आघात को मानसिक व शारीरिक रूप से परेशान करने वाली परिस्थितियों की प्रक्रिया के रूप में अनुभव किया जा सकता है। दर्दनाक कहानी, असाइनमेंट को कवर करना मुश्किल कार्य होता है। आपराधिक हिंसक घटनाएं, प्राकृतिक आपदाएं, दुर्घटना, युद्ध, आतंकवाद जैसी घटनाएं समाचार योग्य घटनाएं होती है, जिन्हें पत्रकार कवर करते हैं। यह घटनाएं अक्सर खतरनाक और चौंकाने वाली होती हैं। पत्रकारों के लिए अनेक तरह से खतरनाक साबित होती हैं। मसलन-मानसिक रूप से नकारात्मक प्रभाव। ट्रॉमा की घटनाओं को अपनी आंखों से देखना व महसूस करना। इसके पश्चात पत्रकारों के मानसिक स्वास्थ्य पर इस तरह की घटनाएं अपना असर छोड़ देती हैं, जो उन्हें पीड़ा, चिंता, डिप्रेशन जैसी समस्या के सामने खड़ा कर देती हैं।

असल में पत्रकारों को अक्सर अलग-अलग क्षेत्र में कार्य करना पड़ता है। इसके परिणाम स्वरूप स्थायी संबंधों की कमी होती है, जो उनके लिए अस्थिरता का कारण अक्सर बन जाती है। इसी प्रकार से कवरेज के लिए अत्यधिक रिस्क वाले क्षेत्रों में पत्रकारों को जाना पड़ता है। जहां सुरक्षा की स्थिति अधिकतर अस्थिर होती है। इसी अस्थिरता के कारण उन्हें कवरेज करने के दौरान कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यही मूल कारण अभिघातक घटनाओं को एक पत्रकार के लिए खतरनाक बनाते हैं। पत्रकारों को उनके जीवन पर आघात के प्रभावों और त्रासदी से प्रभावित जीवन के बारे में सीखने के लिए कोई संगठित या सुसंगत दृष्टिकोण विकसित नहीं किया गया है। अक्सर पत्रकारों को व्यक्तिगत और सामुदायिक आघात को पहचानने, समझने और रिपोर्ट करने के लिए उनके स्वयं के ऊपर छोड़ दिया जाता है।

मीडिया को दुनिया के लिए नागरिकों की खिड़की के रूप में वर्णित किया जाता है। किसी भी स्थिति में पूरा देश अपने प्रश्न 'क्या हो रहा है' के साथ पत्रकारों की ओर देखता है। पत्रकारों के लिए संकट और युद्ध के दौरान यह भूमिका और भी प्रमुख हो जाती है। यदि उदाहरण के साथ इस स्थिति को समझा जाए तो 1999 का कारगिल युद्ध उचित रहेगा। कारगिल युद्ध भारतीय सेना की ओर से पाकिस्तानी घुसपैठियों के साथ लड़ा गया। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने संवाददाताओं और दृश्य प्रभाव के माध्यम से जनता के बीच कारगिल की जानकारी साझा की थी। युद्ध की परिस्थितियां भयावह रहीं। भयावह दृश्यों को टीवी मीडिया ने दिखाने से परहेज किया, क्योंकि वे दृश्य दर्शकों का मन विचलित कर सकते थे।

कारगिल को कवर करने वाली टीवी पत्रकार बरखा दत्त ने अपने एक साक्षात्कार में कहा कि कारगिल की कई अनकही कहानियां उन्हें अब भी याद आती हैं। बरखा दत्त ने कई ऐसे दृश्यों का जिक्र किया, जो भयावह थे। वह कहती हैं कि कारगिल को कई साल हो गए हैं, लेकिन कई प्रकरण स्मृतियों से ओझल नहीं होते हैं। पत्रकार तारिक लोन कारगिल युद्ध कवर करने वाले पहले पत्रकारों में शामिल थे। वह कहते हैं कि मैंने दो महीने तक कारगिल युद्ध की रिपोर्टिंग की। उन क्षणों में मैं जीवित रहकर बहुत भाग्यशाली महसूस कर रहा था। एक घटना में हम एक काफिले के साथ यात्रा कर रहे थे। उसी समय अचानक एक गोला टैंकर पर गिरा, जो हमसे कुछ ही मीटर आगे चल रहा था। दो महीने बाद हम श्रीनगर के लिए निकले। मैं अपने जीवन के उन दिनों को कभी नहीं भूलूंगा।

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि एक पत्रकार द्वारा अभिघातक घटनाओं की रिपोर्टिंग करने के कई पहलू होते हैं। एक पहलू यह कि पत्रकारों की रिपोर्टिंग का असर उनके मानसिक स्वास्थ्य पर इस प्रकार छाप छोड़ता है कि उसकी धुंधली स्मृतियां लंबे समय तक पीछा नहीं छोड़ती। रिपोर्टिंग करने के दौरान ऐसी घटनाओं में कई बार पत्रकारों की मौत तक हो जाती है।

लखनऊ की ऐतिहासिक विरासत है यहां की चिकनकारी

लक्ष्मी

उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ को हम नवाबों का शहर भी कहते हैं। यह शहर अपनी शानदार ऐतिहासिक विरासत और हस्तशिल्प कलाओं के लिए भारत ही नहीं बल्कि विश्व भर में जाना जाता है। इस शहर की कई ऐसी खूबियां हैं जिनका जिक्र इतिहास के पन्नों में मिलता है। कला और संस्कृति का बेमिसाल संगम इस शहर की अनूठी पहचान रहा है। यहां की ऐसी ही एक कला का नाम है चिकनकारी। यह हाथ की कला है, जो वर्तमान समय में तकनीकी विकास के कारण मशीनों की मदद से भी की जाने लगी है।

चिकनकारी का बारीकी वाला काम लखनऊ की सबसे लोकप्रिय और गौरवपूर्ण स्मृतियों में से एक है। यह कला लखनऊ के गांवों तक प्रसिद्ध है, जिसकी मदद से ग्रामीण घरों की अनेक महिलाएं अपनी गुजर बसर करती हैं। कला के इस रूप में कशीदाकारी की करीब 36 तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है। आज के आधुनिक समय में चिकनकारी में मोती और कांच से भी सजावट की जाती है। बात करें चिकनकारी शब्द की तो चिकन शब्द फारसी के चिकिन या चिकीन शब्द से लिया गया है, जिसका मतलब होता है कपड़े पर एक तरह की कशीदाकारी। इसमें किसी भी कपड़े में बेल बूटे उभारने के साथ-साथ कढ़ाई की जाती है, लेकिन भारतीयों की जुबान पर चिकिन शब्द चढ़ते-चढ़ते चिकन बन गया।

चिकनकारी के इतिहास पर नजर डाली जाए तो सबसे पहले चिकनकारी का काम ईरान में शुरू हुआ। कहा जाता है कि ईरान के इलाके में झीलें बहुत हैं और उनमें हंस भी पाए जाते हैं। हंस की लचीली गर्दन से टांके का कांसेप्ट आया। वहीं से चिकनकारी के काम की शुरुआत हुई। ईरान से यह कला हिंदुस्तान पहुंची। दिल्ली से मुर्शिदाबाद और मुर्शिदाबाद से ढाका तक का सफर इसने तय किया। इसके बाद चिकनकारी की कला ने अवध यानी लखनऊ में दस्तक दी। समय की रफ्तार के साथ वहीं अपने पैर जमा लिए। बताते हैं कि 17वीं

शताब्दी में मुगल बादशाह जहांगीर की बेगम नूरजहां तुर्क कशीदाकारी से बहुत प्रभावित थीं और तभी से भारत में चिकनकारी कला का आरंभ हुआ। एक मान्यता यह भी है कि बेगम नूरजहां की एक कनीज थी, जिसे चिकनकारी का काम आता था। उसी ने हिंदुस्तान की कुछ महिलाओं को इस नायाब कला से रूबरू कराया। इस कला ने लखनऊ के साथ-साथ पहले पूरे भारत और फिर दुनिया भर में अपनी छाप छोड़ी। इससे रोजगार को खूब बढ़ावा मिला।

वक्त की मांग के साथ इस कला ने बॉलीवुड फिल्मों और फैशन ट्रेंड में अपनी खास जगह बनाई। चिकनकारी कढ़ाई लखनऊ के गांवों तक प्रसिद्ध है, जिससे अनेक घरों की महिलाएं अपना गुजारा चलाती हैं। चिकनकारी करने वाले कारीगर कई दिनों की मेहनत के बाद एक कपड़ा बेचने

लायक बनाते हैं। कारीगर बताते हैं कि यह काम दिखने में जितना सुंदर है उतना ही मुश्किल है। इसे बनाने के लिए सबसे पहले सादे कपड़े पर एक डिजाइन बनाया जाता है। उसी पर चिकनकारी की जाती है। चिकनकारी में लगभग 40 तरह के टांके और जालियों को शामिल किया जाता है। इसमें फंदा, काटा, टेपची, पंखड़ी, राहत और बखिया जैसी कढ़ाई शामिल होती है। जब डिजाइन पर सभी धागे लग जाते हैं तब उसे साफ करने के लिए भेज दिया जाता है। इसमें कई कारीगर काम करते हैं और हर कारीगर का काम अलग होता है। साढ़े पांच मीटर की एक साड़ी की बारीक कढ़ाई में छह महिलाएं काम करती हैं। कम से कम इसमें दो महीने लग जाते हैं। बात करें इस काम के मेहनताने की तो उन्हें लगभग 12 हजार रुपये मिलते हैं। यानी एक कारीगर को दो महीने में महज दो हजार मिलता है। इसी तरह कुर्ते पर बारीक काम करने के लिए 300 रुपये मिलते हैं।

कारीगरों की मेहनत के अनुसार यह रकम बहुत कम है। इससे वह अपने बच्चों की सामान्य पढ़ाई तक नहीं करवा सकते हैं। इसी वजह से कुछ कारीगर अब यह काम छोड़कर दूसरा काम कर रहे हैं। पर, कुछ कारीगर अब भी यही काम कर रहे हैं। इसके ग्राहकों की बात की जाए तो पहले मुख्य खरीदार मुस्लिम समुदाय से अधिक थे। इसमें ढाका, पाकिस्तान, हैदराबाद और लखनऊ तक के लोग शामिल थे। 1990 के दशक से यह उद्योग अल्पाधिकारवादी से एकाधिकारवादी उद्योग में बदल गया। नए उद्यमियों ने बाजार में प्रवेश किया। फिर धीरे–धीरे आज लखनऊ में चिकन कढ़ाई भारत का सबसे बड़ा कारीगर समूह है।

लखनऊ चिकनकारी की तकनीक को दो हिस्सों में बांटा जाता है। कढ़ाई के पहले और बाद का चरण और सिलाई के 36 रूप, जिन्हें कढ़ाई की प्रक्रिया में इस्तेमाल किया जाता है। चिकनकारी के मुख्यत: तीन चरण होते थे। पहला चरण ब्लॉक प्रिंटिंग का होता है। इसमें कपड़े पर डिजाइन बनाया जाता है। लिबास के अनुसार कपड़े को काटा जाता है। इसके बाद नीली स्याही वाले लकड़ी के छापे से कपड़े पर डिजाइन की छपाई की जाती है। दूसरे चरण में कपड़े को एक छोटे फ्रेम में लगाया जाता है। फिर दाएं हाथ से सुई का काम शुरू होता है और बाएं हाथ से धागे को नियंत्रित किया जाता है ताकि सिलाई छपाई वाले नमूने से ही हो। अंतिम चरण में कढ़ाई का काम पूरा होने के बाद नमूने प्रारूप को हटाने के लिए कपड़े को पानी में भिगोया जाता है। तत्पश्चात कपड़े को कड़ा करने के लिये इसमें कलफ लगाया जाता है। यह पूरी बनने की प्रक्रिया है।

व्यापार की बात की जाए तो चिकनकारी ने बड़े स्तर पर अपना व्यापार फैलाया। चिकनकारी ने पूरे लखनऊ को अपनी कला से इस तरह बांधा कि पूरे लखनऊ ने चिकनकारी को अन्य कलाओं से पहले प्राथमिकता दी, जिसकी वह हकदार भी है। आज लखनऊ में चिकन कढ़ाई समूह भारत का सबसे बड़ा कारीगर समूह है। इसमें लगभग 2.5 लाख कारीगरों को रोजगार मिलता है। यह अपने विश्व प्रसिद्ध चिकनकारी कार्य के लिए एक अंतरराष्ट्रीय बाजार है। आज इस उद्योग का वार्षिक कारोबार 600 करोड़ रुपये है। हैरत की बात यह कि भारत में कुल कारीगरों का लगभग 30 प्रतिशत हिस्सा चिकनकारी का है। यह उद्योग राज्य में सालाना लगभग 1.2 बिलियन अमेरिकी डॉलर का राजस्व उत्पन्न करता है। भारत अपने चिकनकारी वस्त्रों को संयुक्त राज्य अमेरिका, संयुक्त अरब अमीरात, सिंगापुर सहित अनेक देशों को निर्यात करता है। वह दुनिया में चिकनकारी का सबसे बड़ा निर्यातक भी है।

विद्यार्थियों का जीवन छीन रही हैं अंतहीन अपेक्षाएं

• **निशा मिश्रा**

शिक्षा समाज के विकास में नींव का काम करती है। माना जाता है कि जिस देश में लोगों की साक्षरता दर ज्यादा होती है उस देश में विकास भी ज्यादा होता है। साक्षरता दर की इस श्रेणी में भारत विश्व में 33वें स्थान पर आता है। किंतु इस विकास के ऊपरी आवरण तले एक सच यह भी है कि बढ़ते विकास ने विद्यार्थी जीवन में प्रतिस्पर्धा की ऐसी होड़ लगा दी है कि अब हर दूसरा विद्यार्थी उच्च स्थान पर रहना चाहता है। इसके लिए वह महंगे व प्रतिष्ठित निजी संस्थाओं का चयन करके विभिन्न परीक्षाओं की अच्छी तैयारी करने का हर संभव प्रयास करते हैं। इसके बावजूद बड़ी संख्या ऐसी है जो अपनी पूरी जान लगाने के बावजूद पेपर पास नहीं कर पाते। नतीजतन ऐसे विद्यार्थी जो परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो पाते उनमें से कई अंत में अपने अधूरे सपनों को आंखों में लिए मौत को गले लगा लेते हैं। निजी संस्थानों पर भरोसा करके जो अभिभावक अपने बच्चों को आईआईटी या जेईई जैसे एग्जाम को क्लियर करने के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर देते हैं। बावजूद इसके उनके हाथ केवल पछतावा ही हाथ आता है।

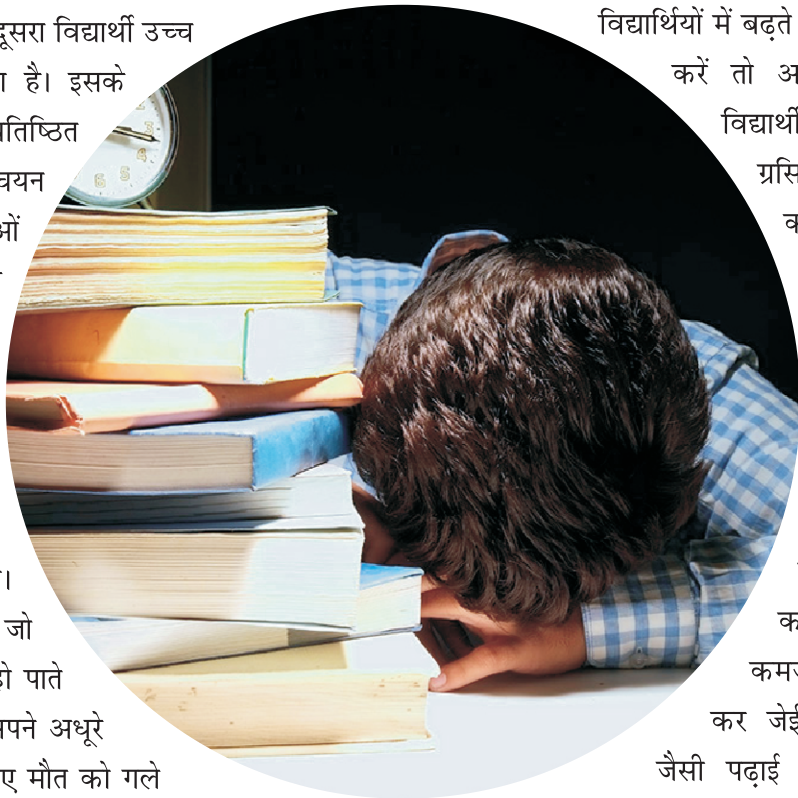

राजस्थान का कोटा शहर भारत में शैक्षणिक हब के रूप में चर्चित है। लेकिन अब यह हब आत्म हत्याओं संबंधी घटनाओं के लिए भी जाना जाने लगा है। 2023 में कोटा में होने वाली आत्महत्या का आंकड़ा 2015 की तुलना में बढ़कर 26 तक पहुंच गया है। 2023 का यह आंकड़ा खुद कोटा के लिए भी आश्चर्यजनक रहा, क्योंकि आत्म हत्याओं के बढ़ते मामलों पर काबू पाने के लिए अगस्त 2023 में राजस्थान सरकार ने उच्च शिक्षा सचिव भवानी सिंह देथा की अध्यक्षता में 15 सदस्य समिति गठित की थी। समिति ने अपनी सिफारिशें भी सरकार को सौंपी। इसके बावजूद घटनाएं रुकने का नाम नहीं ले रहीं।

विद्यार्थियों में बढ़ते मानसिक तनाव की बात करें तो आज अमूमन हर दूसरा विद्यार्थी मानसिक तनाव से ग्रसित है। इसका मुख्य कारण–कड़ी प्रतिस्पर्धा, व्यस्त दिनचर्या, अत्यधिक दबाव, बदलती जीवन शैली, अभिभावकों की अंतहीन अपेक्षाएं और अच्छी पढ़ाई के लिए घर से दूरी विद्यार्थियों को भावनात्मक रूप से कमजोर बना देती है। विशेष कर जेईई मेंस, नीट मेडिकल जैसी पढ़ाई में मानसिक तनाव से पीड़ित विद्यार्थियों की संख्या अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक देखी जा सकती है। यह उनकी पढ़ाई में लगने वाले महंगे खर्च के कारण होता है। अमूमन अभिभावकों में यह धारणा बनी रहती है कि जितना महंगा कोर्स विद्यार्थी का होता है, वह उतना अधिक भविष्य में पैसे कमा पाता है। इसके चलते समाज का मध्यम वर्ग का कमोबेश हर परिवार इस बात पर बल देता है कि उनका बच्चा किसी महंगे कोर्स में दाखिला लेकर भविष्य में अधिक से अधिक पैसे कमाए।

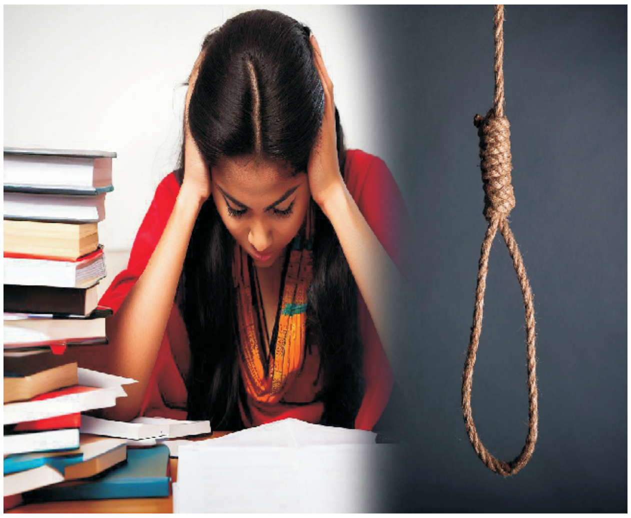

माता-पिता की बच्चों से बढ़ती अपेक्षाओं ने विद्यार्थियों के मन में असफल हो जाने के बाद अभिभावकों के चेहरे पर नजर आने वाले असंतोष, विफलता और हताशा का असहनीय दु:ख का ऐसा डर पैदा कर दिया है, जो उन पर कब हावी होकर उनको मौत के मुंह तक पहुंचा देता है, उन्हें खुद भी पता नहीं होता। इस तनाव को कम करने का सबसे अच्छा उपाय है कि अभिभावक विद्यार्थियों के लिए दबाव नहीं बल्कि प्रेरणा बनें। जब कभी किसी विद्यार्थी की आत्महत्या की सूचना आती है, विशेष कर किसी निजी संस्थान में पढ़ रहे विद्यार्थी की तो घटना का सीधा दोषारोपण निजी संस्थाओं के ऊपर कर दिया जाता है। जरूरत इस बात की है कि हर अभिभावक अपने बच्चों का हौसला बढ़ाए। यदि अभिभावक विद्यार्थियों को प्रेरणा देने की बजाय उनके मन मस्तिष्क पर अप्रत्यक्ष रूप से अपना भविष्य बनाने का दबाव डालेंगे, जो उनकी क्षमता के बिल्कुल विपरीत है तो नि:संदेह वह विद्यार्थी के मनोबल को तोड़ने का काम करेगा।
अक्सर माता-पिता बच्चों के उज्ज्वल भविष्य को लेकर इतना चिंतित होते हैं कि वह यह भूल जाते हैं कि इससे वह उनका वर्तमान छीन रहे हैं। अभिभावकों का प्रेम धीरे-धीरे बच्चों की चिंता तक सिमट कर रह जाता है। जो प्रेम उन्हें समय रहते बच्चों को देना होता है वह समय विद्यार्थी को किस संस्थान में कब और कैसे भेजना है, इसकी योजना बनाने में बीत जाता है। यही कारण है कि जिस उम्र में बच्चे माता-पिता के सबसे करीब रहना चाहते हैं, उनसे जुड़ना चाहते हैं, उस उम्र में न चाहते हुए भी वह उनसे उतना ही दूर हो जाते हैं। अभिभावकों का विद्यार्थी के साथ रूखा व्यवहार उनमें स्वयं के प्रति हीनता का भाव पैदा करता है। साथ ही समय-समय पर उन्हें स्वयं की काबिलियत पर संदेह होने लगता है। नतीजतन जो समय उन्हें अपने विषय को पढ़ने में लगाना चाहिए वह यह सोचने में निकाल देते हैं कि वह ऐसा क्या करें, जिससे माता-पिता को वह खुश कर पाएं।
प्रत्येक बच्चे में एक विशेष गुण होता है, जो उसे बाकियों से अलग बनाता है। इसलिए अभिभावकों को अपने बच्चे के भीतर छुपी प्रतिभा को पहचान कर उन्हें उस क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करना चाहिए। अभिभावकों को यह बात स्वीकारनी चाहिए कि हर बच्चा डॉक्टर अथवा इंजीनियर बनने के लिए नहीं बना होता। यदि अभिभावक के बाद विद्यार्थी अपना सबसे अधिक समय किसी के साथ व्यतीत करता है तो वह हैं उनके शिक्षक और उनके मित्र। यह काफी सकारात्मक भूमिका निभा सकते हैं। साथ ही विद्यार्थी को स्वयं पर भी थोड़ा विश्वास रखना होगा। नकारात्मक विचारों से दूरी बनानी होगी।

ग्रामीण खेलों से छुटकारा ले न जाए बचपन सारा

● **शृंगारिका उपाध्याय**

यह प्रतिस्पर्धा का जमाना है। कोई भी किसी से पीछे नहीं रहना चाहता। इसी चक्कर में गांवों में भी शहर की ओर आने की होड़ मची हुई है। कई लोग पढ़ने के लिए, कई लोग रोजगार के लिए तो कई लोग अपने बच्चों के अच्छे भविष्य के लिए शहरों की ओर रुख कर लेते हैं। इसी कारण कहीं न कहीं हम अपनी पुरानी परंपराएं, जीवनचर्या और पुराने खेल भूलते जा रहे हैं।

भारत के महापंजीयक और जनगणना आयुक्त सी. चंद्रमौली के अनुसार ग्रामीण-शहरी वितरण क्रमशः 68.84 और 31.16 प्रतिशत है। 2001 की जनगणना में शहरी लोगों की आबादी 27.81 प्रतिशत थी, जो अब बढ़कर 31.16 प्रतिशत हो गई है। वहीं ग्रामीण आबादी में 2001 की जनगणना के मुकाबले गिरावट आई है, जो 72.19 प्रतिशत से घटकर 68.84 प्रतिशत रह गई है।

आज के आधुनिक युग में हर किसी के हाथ में मोबाइल दिखाई देता है। बिना मोबाइल के अब हमारी जिंदगी अधूरी सी हो गई है। पहले हमारी मूल आवश्यकता रोटी, कपड़ा और मकान होते थे, लेकिन अब हमारी मूल आवश्यकता रोटी, कपड़ा, मकान और मोबाइल हो चुके हैं। ऐसे में हम अपने गांव के उन खेलों को बिलकुल भूल चुके हैं, जो हमें चुस्त तंदुरुस्त बनाए रखते थे। न अब वह पुराना गुल्ली डंडा कहीं देखने को मिलता है, न वह कंचे खेलते बच्चे दिखाई पड़ते हैं। अब हमें सिर्फ कंप्यूटर और स्मार्ट फोन में वीडियो गेम्स खेलते बच्चे देखने को मिलते हैं। इसकी वजह सिर्फ डिजिटलाइजेशन नहीं बल्कि कहीं न कहीं बच्चों को दिए गए संस्कार भी हैं। हम बच्चों की सुरक्षा और उनके स्मार्ट होने के लिए उनके हाथ में बहुत कम उम्र में मोबाइल थमा देते हैं, जिस कारण वह उस ग्रामीण परिवेश से जुड़ ही नहीं पाते।

पारंपरिक खेल हमें अपनी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर को समझने में मदद करते हैं। यह खेल हमें हमारे पूर्वजों की जीवन शैली, सोच और मूल्यों के बारे में जानने का अवसर प्रदान करते हैं। विद्यार्थी जीवन में पारंपरिक खेलों का अभाव शारीरिक निष्क्रियता, मोबाइल, कंप्यूटर खेलों की अधिकता और समय के अभाव के कारण होता है। विद्यार्थी जीवन में खेलों की भूमिका न केवल शारीरिक स्वस्थता से जुड़ी है बल्कि यह विद्यार्थी का सामाजिक और मानसिक विकास भी करते हैं।

अगर बात की जाए कुछ आधुनिक खेलों की, जिसमें क्रिकेट, बैडमिंटन और फुटबॉल ऐसे खेल हैं, जो दिन पर दिन प्रचलित होते जा रहे हैं। इनमें प्रतिस्पर्धा भी बढ़ती जा रही है। स्कूलों में भी पारंपरिक खेलों को उतनी महत्ता नहीं दी जाती जितना आधुनिक खेलों को दी जाती है। आधुनिक खेलों की चकाचौंध और टेलीविजन वीडियो गेम, मोबाइल के प्रचार-प्रसार में बच्चे अपने ग्रामीण खेलों को जान ही नहीं पाते। गांवों में खेले जाने वाले खेल जैसे कबड्डी, कटिया, लपची-डंडा, अटाई-डंडा, गुल्ली डंडा, चोर-सिपाही, लुका-छिपी, ऊंची कूद, लंबी कूद, रस्सी-कूद, बांस-कूद, रस्साकशी, कुश्ती, खो-खो, जलेबी दौड़, कुर्सी-दौड़, लंगड़ी दौड़ आदि न जाने कितने ऐसे खेल हैं, जो अब धीरे-धीरे आंखों से ओझल होते जा रहे हैं।

हम आए दिन लोगों में नई-नई बीमारियां देखते हैं। बहुत कम उम्र में बच्चों को हार्ट अटैक जैसी गंभीर बीमारी और कमजोर

नजर की शिकायत हो जाती है। बच्चे मोटापे का शिकार हो जाते हैं। इसका कारण है कि एक जगह बैठे-बैठे पढ़ाई करना, खाना खाना या वीडियो गेम खेलना। बच्चे खेल मैदान से ज्यादा मोबाइल में लीन रहते हैं। आज से कुछ समय पहले बच्चे बाहर खेलने के लिए उत्साहित रहते थे। इंतजार करते थे कि शाम के समय उन्हें बाहर खेलने जाना है, लेकिन अब मोबाइल ने उन्हें अपने कब्जे में जकड़ लिया है। वह मोबाइल को छोड़कर कहीं जाना पसंद नहीं करते। इसका सबसे बड़ा कारण है डिजिटलाइजेशन के इस जमाने में हम ग्लोबली एक दूसरे से जुड़ रहे हैं और पश्चिमी परंपराओं को अपनाते जा रहे हैं। पश्चिमी संस्कृति के खेल और व्यवहार ने पारंपरिक खेलों को हाशिए पर धकेलने का काम किया है। अब किसी गली या मोहल्ले में बच्चे खेलते हुए न के बराबर दिखाई देते हैं। वह अपना ज्यादा समय टीवी या मोबाइल में व्यतीत करते हैं। आजकल बच्चे ज्यादा बाहर घूमना या लोगों से मिलना-जुलना भी नहीं पसंद करते हैं, जिससे उनका सामाजिक विकास नहीं हो पाता। बहुत कम उम्र से ही बच्चे खेलकूद को छोड़कर एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ में लग जाते हैं, जो उन्हें तनाव देता है। कंपटीशन को क्रैक करने के लिए वह अपने बचपन को ही भूलते जा रहे हैं।

खेल प्रेमी सुनील झा इसके लिए आधुनिक फैशन के साथ-साथ सरकारी उदासीनता को जिम्मेवार ठहराते हैं। इनका कहना है पहले सभी माध्यमिक विद्यालयों में पारम्परिक खेल के विकास के लिए पर्याप्त संसाधन होते थे। संबंधित शिक्षक अपनी जिम्मेदारी समझ कर नियमित रूप से विद्यार्थियों को खेलने के लिए प्रोत्साहित करते थे। बीच-बीच में विद्यार्थियों के बीच प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती थीं, जिससे उन्हें प्रोत्साहन मिलता था। अब विद्यालय में खेलकूद की परम्परा मानो गुजरे जमाने की बात हो गई है। जबकि सरकार बच्चों में खेल को बढ़ावा देने के लिए सर्व शिक्षा व अन्य माध्यमों से टीएलएम के तहत राशि मुहैया कराती है।

जिला ओलम्पिक संघ के सचिव जीनारायण का कहना है कि पारम्परिक खेलकूद को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने पाइका का गठन किया है, जो पंचायत स्तर पर पारम्परिक खेल को बढ़ावा देने का प्रयास करेगी। बच्चों में ग्रामीण खेलों के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए सबसे पहले अभिभावकों को उनके मन में ग्रामीण खेलों के प्रति रुचि जगानी होगी। तभी उनमें बदलाव आ सकेगा।

पर्यावरण संरक्षण में कॉप सम्मेलन की मुहिम

● अनुराग

समय के साथ-साथ सभी देशों ने तरक्की की। बड़ी-बड़ी इमारतें बनाई। कॉम्प्लेक्स बनाए और भी बहुत कुछ। लेकिन अपनी तरक्की के लिए कुछ बड़े देश इतने लापरवाह हो गए कि उन्होंने सभी प्राकृतिक संसाधनों का इतना इस्तेमाल किया कि आज संसाधन खत्म होने की कगार पर आ गए हैं। विकसित देशों ने विकासशील देशों की चिंता किए बिना संसाधनों का इस्तेमाल किया। विकासशील देशों का भी प्राकृतिक संसाधनों पर उतना ही हक है, जितना बड़े देशों का। विकसित देश आज भी दूसरे देशों की चिंता किए बिना उसी गति से संसाधनों का प्रयोग कर रहे हैं। सभी को पता है कि प्रकृति का कितना बड़ा नुकसान हो रहा है, क्यों हो रहा है, फिर भी प्रकृति की चिंता न करके सभी अपने खुद के विकास में लीन हैं।

औद्योगीकरण का अत्यधिक विस्तार हुआ, जिसके कारण प्रकृति को नुकसान की असहनीय मार झेलनी पड़ी। परिणाम स्वरूप प्राकृतिक ढांचा डगमगाने लगा। इसमें प्रदूषण, ओजोन रिक्तीकरण, मृदा अपरदन, जलवायु परिवर्तन आदि शामिल हैं। इसी नुकसान को रोकने और प्रकृति के संरक्षण के लिए हर साल कॉप का आयोजन करवाया जाता है, फिर भी प्रकृति की स्थिति में सुधार नहीं आ रहा। प्रकृति की स्थिति पहले से अधिक खराब होती जा रही है। दिनोंदिन परिस्थितियां बिगड़ती जा रही हैं। ध्रुवों पर बर्फ पिघल रही है। समुद्र का स्तर बढ़ रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण कहीं बारिश ज्यादा हो रही है तो कहीं न के बराबर हो रही है। पिछले कई वर्षों से यह देखने को मिल रहा है कि देश के कई राज्यों के हिस्से में बड़े स्तर पर बाढ़ आ गई। पूरा का पूरा इलाका जल प्लावन में तब्दील हो गया। सैकड़ों गांव डूब गए। हजारों एकड़ जमीन पर लगी फसल बर्बाद हो गई। बड़े पैमाने पर लोग आर्थिक रूप से तबाह हो गए। वहीं इसके विपरीत कई राज्यों में ऐसे इलाके भी होते हैं जहां फसल उत्पादन भर को भी पानी नहीं बरसता है। वहां सूखा पड़ने की नौबत आ जाती है। किसान मजबूरी में नलकूपों से बार-बार फसलों की सिंचाई करते हैं, लेकिन नलकूपों के पानी से बारिश के पानी की तुलना नहीं की जा सकती। यही कारण हैं कि उस इलाके में फसलों का उत्पादन प्रभावित होता है। इन सबका एक ही कारण है, प्रकृति से खिलवाड़। विकसित देश अपने फायदे के लिए प्रकृति का और अधिक नुकसान न करें और अन्य देश भी इसका ध्यान रखें, इसके लिए संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (यूएनएफसीसीसी) ने कॉप की शुरुआत की।

कॉप का पूरा नाम कान्फ्रेंस ऑफ पार्टीज है। यह एक पर्यावरण सम्मेलन है, जो हर साल विश्व के अलग-अलग देशों में आयोजित होता है। यूएनएफसीसीसी के सदस्य देश इस सम्मेलन में भाग लेते हैं। यह सभी सदस्य देशों के प्रतिनिधियों को एक साथ लाता है, जो जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए कार्रवाई पर चर्चा करने के लिए सम्मेलन के पक्षकार होते हैं। कॉप सम्मेलन में विभिन्न विषयों पर चर्चा की जाती है। जैसे प्राकृतिक संसाधनों का बचाव, जलवायु के संरक्षण और प्राकृतिक आपदाओं से बचाव के उपाय आदि। साथ ही कुछ लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं। उनको हासिल

करने के लिए कुछ वर्षों की समय सीमा निर्धारित की जाती है। विकसित देश कॉप में विकासशील देशों की सहायता करने का वादा करते हैं। पर, देखा जाता है कि कुछ समय बाद पहले की तरह अपने निजी हित के लिए प्राकृतिक संसाधनों का जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल करने लगने हैं। विकासशील देशों की स्थिति अब भी पहले की तरह चिंताजनक है। फास्ट फैशन ने प्रकृति को और अधिक नुकसान पहुंचाया है। नुकसान पहुंचाने वाले घटकों पर नियंत्रण लाने के लिए भी कॉप काम करता है। इसमें शामिल सभी देश मिलकर प्रकृति के बचाव पर बात करते हैं। कुछ भविष्य के लिए लक्ष्य निर्धारित करते हैं, जिन पर काम करके प्रकृति में सुधार किया जा सके।

भारत अब तक दो कॉप सम्मेलन की मेजबानी कर चुका है। सन् 2002 में कॉप-8 दिल्ली और 2012 में कॉप-11 हैदराबाद में हुआ। 2023 में हुए कॉप-28 में भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2028 में होने वाले कॉप-33 को भारत में आयोजित करवाने की घोषणा की है। कॉप 28 का आयोजन यूनाइटेड अरब अमीरात में हुआ था। यह सम्मेलन 30 नवंबर 2023 से 12 दिसंबर 2023 तक चला। सम्मेलन के अध्यक्ष सुलतान अहमद अलजाबेर थे। इसमें 199 देशों ने भाग लिया। विभिन्न राष्ट्राध्यक्षों, राजदूतों, व्यापारिक नेताओं, स्वदेशी समूहों, कार्यकर्ताओं सहित लगभग 85 हजार प्रतिभागियों ने भाग लिया, जिनमें 150 राष्ट्राध्यक्ष थे। कॉप-28 का विषय जीवाश्म ईंधन से दूरी बनाना और व्यवस्थित तरीके से बदलाव करना था। सम्मेलन के अंत में तय हुआ कि जीवाश्म ईंधन को चरणबद्ध करने के बजाय इसका ट्रांजिशन किया जाएगा। ट्रांजिशन यानी कम उत्सर्जन वाले जीवाश्म ईंधन का इस्तेमाल किया जाएगा।

कॉप-28 में विभिन्न लक्ष्य निर्धारित किए गए। इसमें जीवाश्म ईंधन का कम से कम प्रयोग करना, हानि और क्षति के लिए नई फंडिंग करना, व्यावहारिक जलवायु समाधानों को बढ़ावा देना, जलवायु कार्रवाई को प्रकृति आरक्षण से जोड़ना। इस साल 2024 में होने वाला कॉप-29 सम्मेलन अजरबैजान में होगा। यह सम्मेलन 11 नवंबर 2024 से 24 नवंबर 2024 तक चलेगा। इसकी अध्यक्षता मुख्तार बबायेव करेंगे। कॉप-29 एक वित्तीय कॉप होगा। कर्ज के बोझ तले दबी सरकारों और जलवायु प्रभावों से उबरने के लिए बढ़ती लागत के साथ, कमजोर देशों के लिए एक नया वैश्विक जलवायु वित्त समझौता स्थापित करना इस साल के कॉप 29 का प्रमुख एजेंडा होगा। कॉप 29 दुनिया को फिर से पटरी पर लाने और देशों को उनके पर्यावरणीय लक्ष्यों को पूरा करने के लिए जवाबदेह बनाने का बड़ा मौका होगा। इस बार सम्मेलन समिति में परिवर्तन किया गया। पहले हुए कॉप सम्मेलनों में कुल 28 पुरुष शामिल थे, लेकिन एक भी महिला नहीं थी। संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन के कार्यकारी सचिव क्रिस्टियाना फिगुएरेस और अन्य की आलोचना के बाद अन्य दो पुरुषों और 11 महिलाओं को जोड़ा गया। अजरबैजान के कॉप-29 की मेजबानी के फैसले की आलोचना भी की गई। आलोचना मानवाधिकार और राजनीतिक विश्लेषकों ने अजरबैजान के मानवाधिकार के हनन के कारण की थी। संयुक्त राष्ट्र को सौंपी गई अपनी नवीनतम जलवायु योजना के अनुसार अजरबैजान का कहना है कि वह 2030 तक 30 प्रतिशत नवीकरणीय ऊर्जा के अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे। अजरबैजान की डीकार्बोनाइजेशन योजना में 1990 के स्तर से मध्य शताब्दी तक उत्सर्जन में 40 प्रतिशत की कटौती करना भी शामिल है। एक लक्ष्य जो वैज्ञानिकों की सिफारिश से कम है, जिसे विश्व स्तर पर ग्लोबल वार्मिंग से बचने के लिए किया जाना चाहिए।

उत्तराखण्ड मांगे नया भू-कानून

- **साक्षी जोशी**

दो न्याय अगर तो आधा दो/ पर इसमें भी यदि बाधा हो/ तो दे दो केवल पांच ग्राम, रखो अपनी धरती तमाम/ हम वहीं खुशी से खायेंगे/ परिजन पर असि न उठायेंगे...दुर्योधन वह भी दे न सका–फिर इसके बाद जो हुआ वह सर्वविदित है। महाभारत का वही महासंग्राम जिसके लिए भगवान कृष्ण ने चेताया था कि–फन शेषनाग का डोलेगा, विकराल काल मुंह खोलेगा, दुर्योधन! रण ऐसा होगा, फिर कभी नहीं जैसा होगा। इस लेख की शुरुआती पंक्तियां रामधारी सिंह 'दिनकर' की रचना के तृतीय सर्ग से इसलिए ली हैं ताकि इसे पढ़ने वालों को पता चले कि धार्मिक ग्रंथों से लेकर इतिहास के पन्नों तक दुनिया में हुए महासंग्रामों की कहानियां जहां भी दर्ज हैं, उनके मूल में जमीन का सवाल ही सबसे अहम है। जमीन का वही सवाल जिसे समय रहते सुलझाया न जाए तो इसके परिणाम हमेशा घातक होते हैं। जमीन का ऐसा ही एक सवाल इन दिनों उत्तराखंड में भी पूछा जाने लगा है।

यह सवाल है कि आखिर उत्तराखंड में एक सख्त भू–कानून क्यों नहीं है? सवाल इसलिए भी अहम है, क्योंकि देश के अन्य पहाड़ी राज्यों ने अपने पुरखों से विरासत में मिली जमीनों को भूमाफियाओं से बचाने के लिए उचित प्रबंध कर लिए हैं, लेकिन उत्तराखंड में जमीन की लूट–खसोट पर लगाम लगाने की कोई व्यवस्था नहीं है। प्रदेश के लोग भूकानून में सुधार लाने की मांग कर रहे हैं, लेकिन प्रदेश में जमीनों की खरीद के रास्ते हमेशा से खुले रहे हों, ऐसा भी नहीं है। ऐसे में सवाल यह है कि ऐसा आखिर क्या हुआ जो उत्तराखंड में नए भूकानून को लाने की बात हो रही है।

साल 2002 में जब प्रदेश की पहली निर्वाचित सरकार का गठन हुआ तो तत्कालीन मुख्यमंत्री नारायण दत्त तिवारी के नेतृत्व में प्रदेश सरकार ने कुछ भूकानून बनाए। उस दौर में उत्तराखंड में जमीनों से सम्बन्धित मुख्यत: दो कानून प्रभावी थे। एक था 1960 का कुमाऊं एंड उत्तराखंड जमींदारी एवोल्यूशन एक्ट और दूसरा था उत्तर प्रदेश जमींदारी एवोल्यूशन एंड लैंड रिफॉर्म्स एक्ट। इसे उत्तराखंड बनने के बाद यहां की सरकार ने संशोधन करते हुए अपना लिया था। नारायण दत्त तिवारी ने इसी एक्ट में हिमाचल के कानून की तरह प्रदेश में नया प्रावधान बनाया। उस समय राज्य में बाहरी व्यक्तियों के जमीन खरीदने से सम्बंधित सख्त कानून थे। 2002 तक उत्तराखंड में बाहर के राज्यों के लोग सिर्फ 500 वर्ग मीटर की जमीन खरीद सकते थे। 2007 में भुवन चंद्र खंडूरी की सरकार ने इसकी सीमा घटाकर 250 वर्ग मीटर कर दिया।

इसके बाद आई त्रिवेन्द्र सरकार 6 अक्टूबर 2018 को एक नया अध्यादेश लाई। उसमें राज्य में जमीन खरीद की अधिकतम सीमा को ही समाप्त कर दिया। अब उत्तराखंड में बाहरी राज्यों का कोई भी व्यक्ति आकर कितनी भी जमीन खरीद सकता था। उत्तराखंड में जमीन के आंकड़ों पर नजर घुमाएं तो प्रदेश में कुल भूमि का रकबा 55,92,361 हेक्टेयर है। इसमें से 88 प्रतिशत पर्वतीय क्षेत्र हैं, 12 प्रतिशत मैदानी भूभाग है। इस आंकड़े को अगर और तोड़ें तो 34,98,447 हेक्टेयर वन भूमि है। 10,15,041 हेक्टेयर बंजर है। 2,94,756 हेक्टेयर अयोग्य श्रेणी में है। इस तरह 8,31,225 हेक्टेयर ही कृषि भूमि रहती है। यानी कुल भूमि का 63 प्रतिशत जंगल है, 18 प्रतिशत बंजर है, 5 प्रतिशत अयोग्य और सिर्फ 14 प्रतिशत कृषि भूमि है। हालांकि यह आंकड़े काफी पुराने हैं। नए और सटीक आंकड़े खुद सरकार के पास उपलब्ध नहीं हैं।

राज्य सरकार खुद भी मानती है कि राज्य बनने के बाद से करीब एक लाख हेक्टेयर कृषि भूमि कम हुई है। कहीं बड़े बांधों ने कृषि भूमि को अपनी चपेट में ले लिया। कहीं आपदाओं ने तो कहीं पलायन के चलते खाली हुए गांव जंगल बन गए हैं। बताया जाता है कि इस हाल में प्रदेश में सिर्फ छह से सात प्रतिशत ही कृषि भूमि बाकी रह गई है। ऐसे में अगर यह भूमि भी स्थानीय लोगों से छीन ली गई तो आने वाली पीढ़ी लगभग भूमिहीन हो जाएगी। स्थानीय लोगों की मांग है कि एनडी तिवारी सरकार के दौरान जो कानून बना था, जिसे खंडूरी सरकार ने मजबूती दी थी, उसे वापस उसी स्वरूप में लागू किया जाए।

जनसंख्या नियंत्रण : छोटे परिवार की नीति अपनाएं

• आंचल

जनसंख्या नियंत्रण का आशय एक ऐसी तकनीक से है, जिसकी सहायता से शिशु जन्म दर पर नियंत्रण किया जा सकता है। भारत में बढ़ती जनसंख्या को नियंत्रित करना अति आवश्यक है। गत वर्ष भारत लगभग 142.86 करोड़ की आबादी के साथ दुनिया के सबसे अधिक आबादी वाले देश के रूप में चीन को पीछे छोड़ते हुए आगे निकल गया है। अत्यधिक जनसंख्या से देश के संसाधनों पर भार बढ़ता जा रहा है।

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार भारत की वर्तमान जनसंख्या 1,438,518,253 है। हालात यह हैं कि भारत की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का 17.76 प्रतिशत है। बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण पाने के लिए सरकार ने कई कानून व योजनाएं बनाई। साल 2019 में सरकार जनसंख्या नियमन विधेयक 2019 लेकर आई, जिसके तहत दो से ज्यादा बच्चे पैदा करना गलत है। पर, यह विधेयक सही से काम नहीं कर पाया। राजनीति में कई लोगों ने इसका विरोध किया। उनका मानना था कि यह कानून मुसलमानों को टारगेट करने के लिए लाया गया है। संविधान के जानकारों का मानना है कि जनसंख्या नियंत्रण के लिए कानून की बजाय अलग-अलग तरह से लोगों को प्रोत्साहित कर उन्हें जागरूक किया जा सकता है। बताते चलें कि 11 जुलाई 2021 को विश्व जनसंख्या दिवस के मौके पर उत्तर प्रदेश के लिए नई जनसंख्या नीति की घोषणा की गई। उत्तर प्रदेश जनसंख्या नियंत्रण स्थिरीकरण एवं कल्याण विधेयक 2021 बिल में साफ कर दिया गया है कि दो से अधिक बच्चे वाले अभिभावकों को सरकारी योजनाओं का लाभ नहीं मिलेगा। ऐसे लोग सरकारी नौकरी के लिए आवेदन भी नहीं कर पाएंगे।

राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम के तहत जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश लगाने की कई पहल की गई हैं। इसी प्रकार मिशन परिवार विकास के तहत सात उच्च संकेन्द्रण राज्यों-उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़, झारखंड और असम-में तीन एवं अधिक की कुल प्रजनन दर टीएफआर वाले जिलों में गर्भ निरोधक तथा परिवार नियोजन की सुलभता में पर्याप्त वृद्धि करने हेतु मिशन परिवार विकास प्रारंभ किया गया है। लाभार्थियों को आशा कर्मियों की ओर से गर्भ निरोधक घर-घर जाकर देना व परिवार नियोजन की जागरूकता फैलाने की योजना चलाई जा रही है।

जनसंख्या वृद्धि की नई चुनौतियां हमारे सामने आती जा रही हैं। इससे प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ रहा है। पर्यावरण पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ रहा है। बढ़ती जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए भारत के अलावा अन्य देशों ने अलग-अलग कदम उठाए हैं। चीन की वन चाइल्ड पॉलिसी जनसंख्या नियोजन की पहल थी। इसे 1979 और 2015 के बीच परिवारों को एक ही बच्चे तक सीमित करके देश की जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश लगाने के लिए लागू किया गया था।

सिंगापुर का स्टॉप एट टू पॉलिसी एक ऐसा अभियान है, जिसमें दो से अधिक बच्चे न करने पर जोर दिया गया। ऐसे ही कदम भारत सरकार ने भी उठाए हैं। परिवार नियोजन कार्यक्रम के अंतर्गत सरकार वैवाहिक जोड़ों में अपने परिवार के आकार की योजना बनाने के लिए गर्भ निरोधक और नसबंदी जैसी योजना के बारे में जागरूकता फैलाने का कार्य करती है। लोगों को शिक्षित कर उन्हें जागरूक बनाने पर जोर है। लोगों में भी जागरूकता होनी चाहिए कि वह छोटे परिवारों को आदर्श रूप में स्वीकारें। एकल शिशु नीति तथा दो शिशु वाली नीति अपनाएं।

विकसित भारत संकल्प यात्रा

- **विवेक**

विकसित भारत संकल्प यात्रा केंद्र सरकार की ओर से चलाई गई एक बड़ी मुहिम रही। इस यात्रा में विकास के बहुत से पहलुओं को रेखांकित किया गया। 19 करोड़ से ज्यादा लोग विकसित भारत संकल्प यात्रा से जुड़े। इस यात्रा की शुरुआत 15 नवंबर 2023 को की गई थी। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने विकसित भारत संकल्प यात्रा का पहला चरण खूंटी झारखंड में 15 नवंबर 2023 को शुरू किया। विकसित भारत संकल्प यात्रा को शुरू करने का सबसे बड़ा कारण देश के सभी नागरिकों को केंद्र सरकार की योजनाओं का लाभ पहुंचा कर लोगों का विकास करना और साथ ही भारत का विकास करना था। यात्रा यह सुनिश्चित करती है कि जो केंद्र सरकार की कल्याणकारी योजनाएं हैं, वह उस व्यक्ति तक अवश्य पहुंचें, जिन्हें उनकी आवश्यकता है।

विकसित भारत संकल्प यात्रा के तहत केंद्र सरकार की निम्नलिखित कल्याणकारी योजनाएं सम्मिलित की गई हैं। जैसे–उज्ज्वला योजना, आयुष्मान भारत योजना आदि। इसमें आधार कार्ड अपग्रेडेशन जैसी विभिन्न प्रकार की सेवाएं भी प्रदान की जा रही हैं।

संकल्प यात्रा का मुख्य उद्देश्य भारत को समृद्धि, सामरिक न्याय और विकास की दिशा में मजबूती प्रदान करना है। इसमें सुस्त विकास को उत्कृष्टता और समाज में समानता के साथ जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। विकसित भारत संकल्प यात्रा 15 नवंबर 2023 से 26 जनवरी 2024 तक चली। छोटे गांवों ने भी इस यात्रा का लाभ उठाया। लोगों ने लाभार्थी मंच के जरिए अपने जीवन में आए बदलाव को दूसरे लोगों को बताया। इस यात्रा के जरिए डिजिटलीकरण, अर्थव्यवस्था, स्वास्थ्य, शिक्षा, जलवायु परिवर्तन, इंफ्रास्ट्रक्चर और सामरिक सुरक्षा आदि को लोगों तक पहुंचाने का प्रयास किया गया। जिन पहलुओं को उभारने व विकसित करने का प्रयास किया गया, वह सभी देश के विकास के लिए अहम हैं। अगर देश रफ्तार के साथ विकास करना चाहता है तो उन सारे पहलुओं का विकास होना जरूरी है।

यात्रा में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कई कॉन्फ्रेंस कर लाभान्वित लोगों से बात की। इसमें उन्होंने बताया कि मात्र 50 दिन में भारत के 11 करोड़ लोग विकसित भारत संकल्प यात्रा से जुड़े और लाभान्वित हुए। यात्रा का मुख्य मकसद समाज में अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति तक पहुंचना है ताकि उसे सरकारी योजनाओं से जोड़ा जा सके। 15 नवंबर 2023 से ठीक एक महीने बाद प्रधानमंत्री ने मध्य प्रदेश समेत पांच अन्य राज्यों में यात्रा का शुभारंभ किया। इन राज्यों में राजस्थान, छत्तीसगढ़, तेलंगाना और मिजोरम शामिल थे। इन राज्यों में यात्रा शुरू करते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने घोषणा की कि वर्ष 2047 तक भारत विकसित देश होगा, लेकिन इसके लिए लोगों को अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी।

पुस्तक प्रेमियों की शान है विश्व पुस्तक मेला

● **पवन**

किताबों को हमेशा मनुष्य का सबसे अच्छा दोस्त माना गया है। किताबें मानव को ज्ञान का भंडार और जीवन की सच्ची सीख देने का काम करती हैं। आज का दौर आधुनिकीकरण का है, लेकिन ऐसे में भी देश विदेशों में पुस्तक प्रेमियों की संख्या अनगिनत है। इसी रुचि को ध्यान में रखते हुए दिल्ली के प्रगति मैदान में हर साल फरवरी महीने में पुस्तक मेला आयोजित किया जाता है। 2024 में राष्ट्रीय पुस्तक ट्रस्ट की ओर से आयोजित विश्व पुस्तक मेले का 51वां संस्करण 10 फरवरी से दिल्ली के प्रगति मैदान में शुरू हुआ, जिसमें एक राष्ट्रीय ई-लाइब्रेरी का भी उद्घाटन किया गया। इसमें किताबें मुफ्त में देखी और डाउनलोड की जा सकती थीं।

पुस्तक मेला 18 फरवरी तक चला। इसमें कई भाषाओं की किताबों के साथ दो हजार से अधिक स्टॉल लगे। पुस्तक मेले में 40 देशों के एक हजार से अधिक प्रकाशक शामिल हुए। पुस्तक मेला प्रति वर्ष एक थीम पर आधारित होता है। इस वर्ष पुस्तक मेला की थीम बहुभाषी भारत, एक जीवंत परंपरा रही। मेले ने शिक्षकों, पुस्तकालयाध्यक्षों और बच्चों को लेखकों, प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेताओं के साथ बातचीत करने का अवसर दिया। विभिन्न प्रकार की शैलियों को कवर करने वाली पुस्तकों के अलावा दृष्टि बाधित बच्चों के लिए ब्रेल किताबें भी मुफ्त रखी गई। केंद्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान ने इस कार्यक्रम का उद्घाटन किया। इस वर्ष के पुस्तक मेले का अतिथि देश सऊदी अरब था, जहां से 25 लोगों का एक प्रतिनिधि मंडल आया था।

एनबीटी के निदेशक युवराज मलिक ने कहा कि हम देश में पढ़ने की संस्कृति विकसित करने के उद्देश्य के लिए प्रतिबद्ध हैं। हमारा मानना है कि किताबों तक पहुंच जितनी आसान होगी, उतनी ही तेजी से हम अपने लक्ष्य को हासिल करेंगे। आने वाले समय में हमारा प्रयास रहेगा कि ई-लाइब्रेरी देश के हर कोने में सभी के लिए उपलब्ध हो। भारत में भाषाओं और बोलियों की विविधता है। हम साहित्य, कला और ज्ञान के इस उत्सव के माध्यम से राष्ट्रीय एकता की भावना प्राप्त करना चाहते हैं।

मेले में आए लोगों और प्रकाशकों ने भी बढ़ते साहित्यिक और प्रकाशन उद्योग में योगदान करने के तरीके पर चर्चा में भाग लिया। मेले में नेशनल बुक ट्रस्ट की ओर से किताबों के विमोचन और चर्चा के लिए मंच बनाये गये थे। इसी के साथ प्रकाशकों ने भी अपने स्टॉल पर छोटी ही सही, पर एक साइड में पुस्तकों के विमोचन और उसपर चर्चाओं का क्रम लगातार जारी रखा। इसी के साथ एनबीटी ने मेले में हो रही गतिविधियों के लिए एक समाचार पत्र भी निकाला, जिसमें परिसर की अधिक-अधिक से हलचलों को कवर करने का प्रयास किया गया। अन्य कार्यक्रमों के साथ बच्चों के मंडप में इंटरेक्टिव सेशन की मेजबानी, लेखक का कोना, अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम का कोना, सीईओ भाषण और नई दिल्ली राइट्स टेबल की भी व्यवस्था थी। एक युवा कॉर्नर था, जहां अखिल भारतीय प्रतियोगिता के माध्यम से चुने गए 75 युवा लेखकों को स्थापित लेखकों की ओर से मार्गदर्शन दिया गया। मेले के दौरान कई सांस्कृतिक कार्यक्रम भी हुए। एनबीटी के वर्तमान

अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे ने कहा हम 2020 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में बहु भाषावाद पर जोर और विद्यार्थियों द्वारा भारत की मूल भाषाएं सीखने के महत्व पर भी प्रकाश डालना चाहते हैं।

सह आयोजक आईटीपीओ की महाप्रबंधक हेमा मैती के अनुसार पुस्तक मेले में स्कूल यूनिफार्म पहने बच्चों, वरिष्ठ नागरिकों और दिव्यांगों के लिए प्रवेश नि:शुल्क रहा। आगंतुकों के लिए आईटीपीओ मैदान में एक फूड कोर्ट स्थापित किया गया। प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे का कहना है कि यह मेला बौद्धिक संवाद और पाठक वर्ग को बढ़ावा देने के लिए एक प्रभावी मंच है। काम के लिए कोलकाता से राजधानी आए अनिंद्य चटर्जी पुस्तक मेलों को बचपन के जादू के शिखर के रूप में याद करते हैं। हैरत की बात यह है कि उन्होंने पिछले 30 वर्षों में नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला का एक भी संस्करण नहीं छोड़ा है। वह कहते हैं कि मैं इस बात से बेहद खुश हूं कि यह हर साल कितने बड़े स्तर पर होता जा रहा है।

एनबीटी के निदेशक युवराज मलिक कहते हैं कि पुस्तक मेला में भारत की एकता का अंतर्निहित ताना-बाना अपनी भाषाओं, बोलियों और संस्कृतियों के विविध गतिविधियों के माध्यम से प्रकट होता है। यहां कला, साहित्य, ज्ञान और संस्कृति का मिश्रण राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दर्शकों को आकर्षित करता है। मेले को विशेष क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है। इसमें 500 शैक्षणिक चर्चाएं, पुस्तक लॉन्च, लेखकों से मुलाकात, प्रकाशकों के साथ नेटवर्किंग के अवसर शामिल थे, ताकि लोगों के बीच साहित्यिक रुचि को बढ़ावा दिया जा सके। प्रकाशन का विस्तार करने के लिए आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस एआई का उपयोग किया जा सके। देशों में व्यापार बढ़ सके।

इस वर्ष राष्ट्रीय शिक्षा नीति एनईपी 2020 के अनुरूप एक ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म जादुई पिटारा का अनावरण किया गया। पहेलियों और कहानियों से युक्त एआई का उपयोग करके 22 भाषाओं में अनुवादित समावेशी और सूचनात्मक सामग्री का उद्देश्य बचपन की शिक्षा में बदलाव लाना है। एनईपी 2020 के अनुरूप कई विशेष मॉड्यूल, शिक्षण संसाधन और विषय मॉड्यूल भी लॉन्च किए गए। देश में पढ़ने की संस्कृति विकसित करने के उद्देश्य से बनाया लाइब्रेरी प्लेटफॉर्म हर किसी को अपनी पसंद की किताबें डाउनलोड करने की सुविधा उपलब्ध कराता है। भारतीय भाषाओं और लिपियों के विकास एवं विरासत को प्रदर्शित करने वाले थीम मंडप को बेहतर तरीके से डिजाइन किया गया। बच्चों के मंडप ने आगंतुकों की रुचि को बढ़ाया।

दिल्ली विवि की पुष्प प्रदर्शनी का क्या कहना...

● **आयुष**

दिल्ली विश्वविद्यालय के दक्षिणी परिसर स्थित गौतम बुद्ध शताब्दी उद्यान में हर साल की तरह 2023 में भी पुष्प प्रदर्शनी लगी। जब बात फूलों की आती है। उसकी सुंदरता, सुगंध, आभा और चमक की आती है। महत्व की आती है तो बचपन में छोटी कक्षाओं में पढ़ी गई हिंदी की किताबें याद आती हैं। उसमें फूलों की महिमा का बखान करने वाली कवि माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा' शीर्षक कविता की पंक्तियां गुनगुनाने का मन करता है। मसलन-'चाह नहीं मैं सुर बाला के गहनों में गूंथा जाऊं/चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊं/चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊं/चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूं भाग्य पर इठलाऊं/मुझे तोड़ लेना वनमाली! उस पथ पर देना तुम फेंक/मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक...।' इस तरह विश्वविद्यालय हर साल पुष्प प्रदर्शनी के जरिए दर्शकों को बुद्ध उद्यान में खींच लाता है। इसकी वजह प्रदर्शनी की विविधता, सुंदरता और रौनक है। विवि प्रदर्शनी में गेंदा, गुलाब, ट्यूलिप, डहेलिया जैसे फूलों की विभिन्न प्रजातियों से लोगों को आकर्षित करता है। इन प्रजातियों के 100 से अधिक प्रकार के पौधे और फूलों को प्रदर्शित किया जाता है। इन पौधों और उनके गमलों को कुछ इस तरह सजाया जाता है कि वह अपने आप में लोगों को अपनी ओर खींचते हैं।

इन गमलों में कुछ वार्षिक प्लांट होते हैं। कुछ लताओं वाले होते हैं तो अधिकांश खिले हुए फूलों के होते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य लोगों को विभिन्न प्रकार के फूलों की विविधता और व्यापकता को दिखाना होता है। फूलों के अलावा और भी बहुत कुछ देखने के लिए होता है। जब लोग दिल्ली विवि की पुष्प प्रदर्शनी का नाम सुनते हैं तो उन्हें लगता है कि मानो वहां केवल फूल होंगे। वैसे ऐसा नहीं है। यहां फूलों के अलावा सब्जी उद्यान और सब्जियों का संग्रह भी है। एक टोकरी में बारह विभिन्न प्रकार के सब्जियों का संग्रह देखना अपने आप

में रोचक है। इसमें चुकंदर, बैगन, बंद गोभी, गाजर, फूल गोभी, गांठ गोभी, सलाद के पत्ते सहित प्याज, मटर, आलू, टमाटर सहित अनेक सब्जियां शामिल हैं। इसी प्रकार छोटी टोकरी में पपीता, केला, अनार, चीकू और अमरूद के फलों का संग्रह है। लकड़ी की ट्रे में उगाई गई घास मन मोहती है। मौसमी फूल वाले पौधे आकर्षण का केंद्र बने होते हैं। हर्बल पौधे जड़ी बूटियों की किस्मों को दिखा रहे हैं।

हाइब्रिड सीड्स और बच्चों के खिलौने के स्टॉल भी लोगों को लुभाते हैं। मशरूम की अलग-अलग प्रजातियां देखने को मिलती हैं। लोग देखने के साथ खाने और खेलने का भी लुत्फ उठाते हैं। डीयू हाट और फूड स्टॉल मुख्य आकर्षण का केंद्र रहते हैं, जिनमें साउथ से लेकर उत्तर भारत के अलग-अलग फूड का स्वाद लिया जा सकता है। इसी दरम्यान फोटोग्राफी, स्टैंडी और स्लोगन लेखन कर अनेक प्रतियोगिताओं में हिस्सा ले सकते हैं। विवि से जुड़े सभी संस्थानों सहित अन्य सरकारी

एवं गैर सरकारी संस्थाओं से जुड़े लोगों को भी प्रदर्शनी में आमंत्रित किया जाता है। उसमें प्रतिभाग करने के लिए आवेदन भी आमंत्रित होते हैं। फ्लावर शो में पौधों की कई श्रेणियों व उपश्रेणियों में प्रतिस्पर्धी प्रविष्टियां शामिल होती हैं। इनमें महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, माध्यमिक स्कूल, अन्य शैक्षणिक संस्थान सहित राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के उद्यान विभाग को बुलाया जाता है। खास बात यह कि शिक्षण संस्थानों से जुड़े माली भी इसमें आवेदन कर प्रतिभाग कर सकते हैं। विजेताओं को चैलेंज कप, सचल कप, रनिंग कप, शताब्दी कप जैसी ट्रॉफी कप देकर पुरस्कृत किया जाता है। प्रदर्शनी में सबसे अधिक अंक प्राप्त करने वाले को कुलपति कप से नवाजा जाता है। विजेताओं द्वारा सचल कप व रनिंग कप तब तक रखा जा सकता है जब तक अगली प्रदर्शनी की घोषणा नहीं हो जाती। यह कप अगली प्रदर्शनी से कम से कम 6 सप्ताह पूर्व बिना किसी प्रकार के नुकसान के वापस करना होता है।

इस बार दिल्ली विश्वविद्यालय उद्यान समिति ने स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग के संयुक्त तत्वावधान में 66वीं पुष्प प्रदर्शनी का आयोजन किया था। इस बार राम मंदिर, जय श्रीराम की

आकृति को फूलों से सजाकर इसकी भव्यता, दिव्यता, अलौकिकता, व्यापकता, प्रासंगिकता और भारत की संस्कृति को दिखाने का प्रयास किया गया। विजिटर के लिए वृत्ताकार फूलों से सजा आई लव डीयू सेल्फी स्टैन्ड आकर्षण का केन्द्र रहा। इस बार राष्ट्रपति भवन ने भी कार्यक्रम में भाग लिया। इस बार की थीम महिला सशक्तीकरण को समर्पित थी। प्रदर्शनी का उद्देश्य उन महिलाओं के योगदान को सम्मानित करना था, जिन्होंने पर्यावरण की रक्षा में महती भूमिका निभाई है। दिल्ली विश्वविद्यालय की वार्षिक पुष्प प्रदर्शनी एक बहुप्रतीक्षित कार्यक्रम बन गई है, जो प्रकृति प्रेमियों, विद्यार्थियों और स्थानीय समुदाय को आकर्षित कर रही है। फूल जीवन को प्रेरणा देते हैं, लेकिन अगर उनमें खुशबू न हो तो वह अच्छे नहीं लगते। इसी तरह से हमारा जीवन है। हमारे जीवन में अच्छाई, अपनेपन और मूल्यों की खुशबू होती है। अगर व्यक्ति के जीवन में अपनापन और दूसरों के लिए अच्छा करने की चाह नहीं होगी। मूल्य नहीं होंगे तो वह जीवन निरर्थक हो जायेगा। अगर आप भी फूलों की इस दुनिया को जीना, देखना और समझना चाहते हैं तो अगले वर्ष अपने कैलेंडर में मार्च महीना अंकित कर लें और डीयू उत्तरी परिसर के भीतर इस सुरम्य स्थान पर आयोजित होने वाले भव्य उत्सव में जरूर शामिल हों।

नया नजरिया दिखाती प्रतिनिधि कविताएं

● योगेश प्रताप

'गोली खाकर एक के मुंह से निकला–'राम'
दूसरे के मुंह से निकला–'माओ'
लेकिन तीसरे के मुंह से निकला–'आलू'
पोस्टमार्टम की रिपोर्ट है
कि पहले दो के पेट
भरे हुए थे...'

कविता की यह पंक्तियां हैं जनवादी और प्रगतिशील लेखक सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की, जिसका शीर्षक है 'पोस्टमार्टम की रिपोर्ट'। कहा जाता है कि एक कविता संग्रह में अगर 4–5 कविताएं भी अच्छी मिल जाती हैं तो लगता है सफर अच्छा रहा। इस एक कविता संग्रह 'प्रतिनिधि कविताएं' में बीसियों रचनाएं ऐसी मिलेंगी जो मन को मोह लेंगी। मस्तिष्क पर छाप छोड़ देंगी। मन उदास कर देंगी और सोचने पर मजबूर कर देंगी।

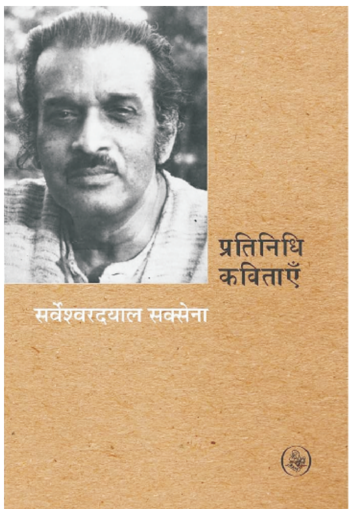

पुस्तक : प्रतिनिधि कविताएं
लेखक : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
संपादक : प्रयाग शुक्ल
प्रकाशन : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने समाज में बहुत कुछ देखा, जाना और समझा। उस देखे–सुने को जैसे का तैसा हमारे समक्ष काव्य, कथा साहित्य, नाटक, उपन्यास के माध्यम से परोस दिया। राजकमल समूह से प्रकाशित 'प्रतिनिधि कविताएं' संकलन में सर्वेश्वर जी की काव्य यात्रा से गुजरा जा सकता है। इसमें 1949 से लेकर 1981 तक की चुनिंदा कविताएं संकलित हैं। इन कविताओं को चुनने और संकलन करने में संपादक प्रयाग शुक्ल ने अहम भूमिका निभाई।

सर्वेश्वर जी की कविताओं में एक अद्वितीय संबंध देखने को मिलता है, जिसमें वे विरासत में प्राप्त साहित्यिक परंपराओं का सम्मान करते हुए उन्हें आधुनिकता के साथ जोड़ते हैं। उनकी कविताओं में गहरा ध्यान और भावनात्मक ऊर्जा होती है, जो पाठक को उनके सन्देश को समझने और महसूस करने में मदद करती है।

इस संकलन में सर्वेश्वर जी की पहली किताब 'काठ की घंटियां' से लेकर इनके अन्तिम कविता संग्रह 'खूंटियों पर टंगे लोग' तक से कविताएं ली गई हैं। यानी इसमें उनके हर संग्रह से कुछ न कुछ कविताएं हैं। इस तरह यह उनकी कविताओं का केवल प्रतिनिधि संग्रह ही नहीं बल्कि ऐसा संग्रह है जो उनकी काव्य यात्रा के लगभग हर चरण से हमें परिचित कराता है। ये कविताएं आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व के काल खंड, संघर्ष और समय की होने के बावजूद वर्तमान समय में भी उतनी ही सार्थक और प्रासंगिक साबित होती हैं।

तुम्हारे साथ रहकर, भूख, कितना अच्छा होता है, पोस्टमार्टम की रिपोर्ट, रिश्ता, पांच नगर प्रतीक, इस मृत नगर में, कवि मुक्तिबोध के निधन पर, भेड़िया 3, तुमसे, जूता भाग 1–4, हजूरी, धीरे–धीरे, अंत में... कुछ ऐसी कविताएं हैं जो पहले पाठ में अत्यंत पसंद आती हैं। तीन रचनाएं कुआनों नदी शीर्षक पर हैं, जिसमें गांव, गरीबी, भूख, मृत्यु, समाज और जिंदगी के निरंतर चलते रहने की छोटी–छोटी कड़ियां हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की ये कविताएं जितनी बार आप पढ़ेंगे, आपको एक नया दर्शन देंगी, एक नया नजरिया देंगी।

संग्रह में सर्वेश्वर जी ने कुछ अनछुए विषयों को अपनी कविताओं में पिरोया है। उनकी ये कविताएं भारतीय समाज के संघर्ष, राष्ट्रीय चिंताएं और मानवता के मूल्यों को उजागर करती हुई दिखाई देती हैं। यह पुस्तक उन लोगों के लिए भी उपयुक्त है जो कविताओं के माध्यम से भारतीय समाज और मानवता के विभिन्न पहलुओं को समझना चाहते हैं।

"किसी की प्रशंसा या अप्रशंसा, किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता, किसी की घुड़की या धमकी हमें अपने सुमार्ग से विचलित न कर सकेगी। सत्य और न्याय हमारे भीतरी पथ-प्रदर्शक होंगे और सरकारी कानून, बाहरी सांप्रदायिक और व्यक्तिगत झगड़ों से 'प्रताप' सदा अलग रहने की कोशिश करेगा।... हम अपने देश और समाज की सेवा के पवित्र काम का भार अपने ऊपर लेते हैं। हम अपने भाइयों और बहनों को उनके कर्तव्य और अधिकार समझाने का यथा-शक्ति प्रयत्न करेंगे। राजा और प्रजा में, एक जाति और दूसरी जाति में, एक संस्था और दूसरी संस्था में बैर और विरोध, अशांति और असंतोष न होने देना हम अपना परम कर्तव्य समझेंगे।"

गणेश शंकर विद्यार्थी

(26 अक्टूबर 1890-25 मार्च 1931)

'प्रताप' की प्रथम संपादकीय का अंश

हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, राम लाल आनंद महाविद्यालय

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

बेनितो जुआरेज मार्ग, नई दिल्ली-110021